REGD. NO. L. 2077

भक्ति

वर्ष १] अङ्क ८]

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥

ज्येष्ठ सम्वत १९८४ ।

भक्ति के नियम।

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना गौ रक्षण और उस के लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना। वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना। सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना। राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. वार्षिक चन्दा सर्वसाधारण से २) होगा।

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. अश्लील और अपरिचित विज्ञापन नहीं लिए जावेंगे।

६. लेखों को प्रकाशित करना और और घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नाम से और विज्ञापन व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

विषय सूची।

नं०	विषय	पृष्ठ
१.	मङ्गलाचरण।	१
२.	भक्तों के चरित्र।	४
३.	पुरुषार्थ और प्रारब्ध	८
४.	याज्ञवल्क्य का जनक को उपदेश	१०
५.	अथ पंच भ्रमनिवर्तक दृष्टान्त पंचकम्	१४
६.	शाश्वत जीवन। (ले० श्री० रामचन्द्र जी जज एम. ए.)	१६
७.	निरालम्ब उपनिषद्	१८
८.	विविध समाचार।	२१
९.	भजन।	२३
१०.	शारीरिकश्रम।	२५
११.	शान्ति।	२८
१२.	ब्रह्मचर्य।	२९
१३.	महात्माओं के वाक्य।	३०
१४.	गौशाला।	३२
१५.	अनुभूत औषधियें। (ले० श्री० हीरानन्द ब्रह्मचारी)	३२

ॐ

"कर्त्तांनु केवला भक्तिः" ।

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादकः-

भक्ति

एक प्रति का ।)

स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती ।

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जागृत करने वाली मासिक पत्रिका ।

वर्ष १ } भगवद्भक्ति आश्रम रामपुरा, ज्येष्ठ, पूर्णिमा सं० १९८४ । { अङ्क ८

॥ मंगलाचरणम् ॥

सच्चिदानन्दकन्दाय जगदंकुर हेतवे ।
सदोदिताय पूर्णाय नमोऽनन्ताय विष्णवे ॥ १ ॥

सच्चिदानन्दकन्द, जगदुत्पत्तिहेतु, सदादित्य, पूर्ण, अनन्त विष्णु के लिये नमस्कार हो ॥१

भूतलातल मध्यस्थो हत्वा तु मधुकैटभौ।
उ-्धृता येन वै वेदास्तस्मै मत्स्यात्मने नमः ॥ २ ॥

भूतल पर स्थित होकर मधुकैटभ को मार जिस ने वेदों को उद्धृत किय,उस मत्स्यावतार के लिए नमस्कार हो ।

ससागरवनां विभृत्सप्तद्वीपां वसुन्धराम् ।
यो धारयति पृष्ठेन तस्मै कूर्मात्मने नमः ॥ ३ ॥

सागर और वन वनान्तरों को हरण करनी वाली सात द्वीप वाली वसुन्धरा को जिस ने पीठ से धारण किया उस कूर्मावतार के लिये नमस्कार हो ॥३॥

एकार्णवेहि मग्नां गां वाराहं रूपमास्थितः ।
उद्दधारमहीं योऽसौ तस्मै क्रोड़ात्मने नमः ॥ ४ ॥

बाराह रूप का आश्रय करके समुद्र में डूबी हुई पृथ्वी का जिस ने उद्धार किया उस बाराहावतार के लिये नमस्कार हो ॥ ४ ॥

नारसिंह वपुः कृत्वा यस्त्रैलोक्यभयंकरम् ।
हिरण्यकशिपुं जघ्ने तस्मै सिंहात्मने नमः ॥ ५ ॥

तीनों लोकों को भय देने वाले नारसिंह वपु को धारण कर जिस ने हिरण्यकशिपु को मारा उस नृसिंहावतार के लिये नमस्कार हो ॥ ५ ॥

वामनं रूपमास्थाय वलिं संयम्य मायया ।
इमे क्रान्तास्त्रयो लोकास्तस्मै क्रांतात्मने नमः ॥ ६ ॥

वामन रूप धारण कर माया से बलि को बांध कर और तीन पैरों से तीनों लोकों को जिस ने आच्छादित किया है उस वामनावतार के लिये नमस्कार हो ॥ ६ ॥

जमदग्नि सुतो भूत्वा रामः परशुधृग् विभुः ।
सहस्रार्जुनहन्तैव तस्मै उग्रात्मने नमः ॥ ७ ॥

परशु को धारण करने वाले विभु परशुराम ने जमदग्नि के पुत्र रूप होकर ने सहस्रार्जुन को मारा उस उग्र रूप परशुराम के लिये नमस्कार हो ॥ ७ ॥

रामो दाशरथिर्भूत्वा पौलस्त्य कुलनन्दनम् ।
जघान रावणं संख्ये तस्मै क्षत्रात्मने नमः ॥ ८॥

दशरथ का पुत्र हो कर जिस राम ने युद्ध में पौलस्त्य कुल के नन्दन रावण को मारा उस क्षत्रिय स्वरूप रामचन्द्रावतार के लिये नमस्कार हो ॥८

वसुदेव सुतः श्रीमान् वासुदेवो जगत्पतिः ।
जहार वसुधाभारं तस्मै कृष्णात्मने नमः ॥ ९ ॥

जगत् के पति वसुदेव के पुत्र जिस श्रीमान् वासुदेव ने वसुधा के भार को हरण किया उस भगवान् कृष्णावतार के लिए नमस्कार हो ॥ ९ ॥

बुद्धरूपं समास्थाय सर्वरूप परायणः ।
मोहयन्सर्वभूतानि तस्मै मोहात्मने नमः ॥ १० ॥

बुद्ध रूप को आश्रय करके सर्व रूपों में परायण होकर जिस ने सब भूतों को मोहा उस मोह स्वरूप बुद्धावतार के लिये नमस्कार हो।

हनिष्यति कलेरन्ते म्लेच्छांस्तुर्गं वाहनः ।
धर्मं संस्थापनार्थाय तस्मै कल्क्यात्मने नमः ॥ ११ ॥

तुर्गं वाहन कलि के अन्त में धर्म की स्थापना के लिए म्लेच्छों का संहार करेंगे। उस कल्कि भगवान् के लिए नमस्कार हो ॥ ११ ॥

भक्तों के चरित्र ।

पीपा जी ।

पीपा जी भगवान् के परम भक्तों में से हैं । यह गागरौनगढ के राजा थे और भगवति दुर्गा के उपासक थे । एक बार कुछ भगवद्भक्त साधु महात्मा इन की राजधानी में जा निकले । पीपा जी ने भोजन से उन का आदर सत्कार किया, साधु महात्माओं ने भगवान् से प्रार्थना की कि इस राजा को भगवान् की भक्ति होनी चाहिये । रात को स्वप्न हुआ कि भगवद्भक्ति बिना उद्धार होना असंभव है । पीपाजी ने भगवद्भक्ति करना आरम्भ किया और उन को संसार की सब रचना असार दिखाई देने लगी । स्वप्न में दुर्गा जी ने दर्शन दिये और वर मांगने को कहा । पीपा जी ने इच्छा प्रकट की कि भगवान् की भक्ति चाहता हूं । दुर्गा जी ने बतलाया कि भगवद्भक्ति के लिये रामानन्द जी को गुरु धारण करना चाहिये । पीपा जी रामानन्द जी के दर्शन के लिये बड़े व्याकुल हुये और खोज करते हुए काशीजी पहुंचे । वहां जाकर दर्शन की अभिलाषा की परन्तु रामानन्द जी ने यह कह कर इनकार कर दिया कि यह घर त्यागी आदमियों का है राजा का यहां क्या काम है । पीपाजी सब कुछ त्याग करके सेवा में उपस्थित हुए और बोले कि मैं फकीर होगया हूं । रामानन्द जी ने आज्ञा दी कि कुए में गिर पड़ो । आज्ञा पाते ही कुए में गिरने चले परन्तु निकट आने पर रामानन्द जी के शिष्यों ने पकड़ लिया । रामानन्द जी ने अपने पास बुलाकार प्रेम किया और आज्ञा दी की अपने घर जाकर भगवान् का भजन और साधु सेवा करो एक वर्ष पश्चात् हम वहां आवेंगे ।

पीपा जी घर आए, और ऐसे प्रेम व निष्ठा से साधु सेवा व भजन में प्रवृत्त हुए कि वर्णन करना कठिन है । एक वर्ष पश्चात् पार्थ । पत्र लिखा कि दया करके पधारिए । रामानन्द जी कबीर, रैदास आदि चालीस चेलों सहित आए । पीपा जी ने बड़ी ही श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से सेवा की । रामानन्द जी वहां कुछ दिन ठैरकर द्वारका जी को चले तो पीपा जी चलने के लिये बड़े व्याकुल हुए । रामानन्द जी ने उनकी भक्ति व प्रेम देख कर कहा कि चाहे यहां रहो चाहे विरक्त

होकर साथ चलो। पीपाजी सुनते ही राज्य पाट को तिलाञ्जली दे साथ हो लिए। बारह रानी भी साथ चलीं। पीपाने जी ग्यारह को समझा कर वापिस कर दिया परन्तु सब से छोटी रानी जिसका सीता नाम था किसी तरह भी वापिस जाने पर राजी न हुई। उसने कफनी पहरना और नङ्गे रहना सब कुछ स्वीकार कर लिया तब रामानन्द जी ने वचन लेकर साथ रहने की आज्ञा दी। एक ब्राह्मण को राजा से बड़ा प्रेम था वह भी साथ हुआ, उसको मना किया तो वह विष खाकर मरगया।

रामानन्द जी तो द्वारका से काशी चले गए परन्तु पीपाजी द्वारका जी में रहे एक दिन भगवान् के दर्शनों की उत्कट इच्छा हुई, समुद्र में कूद पड़े। भगवान् की दया से दिव्य द्वारका में पहुंच गए दर्शन पाया और सात दिन वहां रहे फिर सीता सहित समुद्र के किनारे पर निकल आए लोगों ने बड़ा आश्चर्य माना। भगवान ने पीपाजी को छाप दी थी वह छाप पुजारियों को देदी। इस घटना से लोगों की भीड़ होने लगी इसलिए पीपाजी वहाँ से चल दिए। आगे आकर पठानों का एक गिरोह मिला उन्होंने सीता जी को सुन्दरी देखकर छीन लिया। सीता जी ने भगवान् को याद किया, याद करते ही भगवान् आए और दुष्टों को दण्ड देकर सीता को छिना लिया। इस पर पीपा जीने सीता जी को समझाया कि अब भी घर चली जाओ, परन्तु सीता ने उत्तर दिया कि आपको क्या चिन्ता है भगवान् आप ही सब प्रकार से दया करते हैं। आगे एक ग्राम में ठैरे वहां चीधर नामका एक भक्त था उसके घर चले गए। यह भक्त अत्यन्त कंगाल था अपनी स्त्री के लंहगे को बेचकर भोजन की सामग्री लाया और स्त्री नङ्गी कोठे में बैठी रहीं। ठाकुर जी को भोग लगाने के पीछे पीपा जी ने चीधर भक्त और उसकी स्त्री को प्रसाद पाने के लिए बुलाया। चीधरने उत्तर दिया, आप भोजन करें। पीपाजी ने सीता को भेजा सीता ने जाकर देखा और सब बात समझ गई और उनके भाव के सामने अपनी भक्ति को तुच्छ समझा सीता अपने वस्त्र का आधा भाग देकर उसे बहर लाई और साथ में प्रसाद पाया। इनके इस भाव व अत्यन्त दरिद्रता को देखकर सीता ने निश्चय किया कि वेश्या कर्म से शीघ्र रुपया मिल जावेगा इसलिए बाज़ार में जा बैठे। लोग देखकर आए और पूछा कि कौन हो तो उत्तर दिया कि वारमुखी हैं घर बार कोई नहीं है केवल एक सबाजी साथ है परन्तु उनके तप के प्रभाव से किसी को हंसी करने का भी साहस न हुआ लोगों ने रुपया, पैसा भेंट किए। पीपा जी चीधर भक्त को दे आए परन्तु भक्त ने उसी दिन भण्डारा करके खिला दिया और आप वैसे ही कंगाल बने रहे। उस देश का राजा सूरसेन था पीपाजी का नाम सुन

कर आया और विनय की कि मंत्र दे कर मुझको भी अपना जैसा शिष्य बना लीजिए। पीपाजी ने उत्तर दिया कि अपनी सम्पत्ति व रानी इत्यादि सब हमारी भेंट करो। राजा ने तुरन्त वैसा ही किया। पीपाजी ने मंत्र का उपदेश कर भगवद्भक्ति की आज्ञा दी और राज पाट सब वापिस कर दिया और कहा कि भगवद्भक्तों से परदा का का कुछ प्रयोजन नहीं होना चाहिये। राजा के भाई बन्धु इस बात से बहुत नाराज़ हुए और पीपाजी के शत्रु बन गए। वहां पर एक बनजारा बैल मोल लेने आया। राजा के भाइयों ने उसको बहका दिया कि पीपा के पास बहुत अच्छे बैल हैं। बनजारे ने पीपाजी के सामने रुपया रखकर कहा कि अच्छे २ बैलों की जरूरत है। पीपाजी समझ गए उत्तर दिया रुपया छोड़ जाओ बैल चराई पर गए हैं फिर आकर लेजाना। बनजारा तो चला गया और पीपाजी ने उसके रुपए से भण्डारा प्रारम्भ कर दिया। हजारों साधु भोजन को आगए। बनजारा आया और बैल मांगने लगा पीपाजी ने उत्तर दिया इन में से अच्छे २ बैल पसन्द करलो यह परम धाम तक खेप पहुंचा देंगे। बनजारा सुन कर प्रसन्न हुआ और साधुओं को वस्त्र प्रदान किए।

एक बार पीपा जी हरि भक्तों की समाज में गए थे घर पर साधु आगये, घर में कुछ न था सीता जी बाजार में जाकर एक बनिये के हाँ से सौदा ले आई और यह करार किया कि रात को तेरे पास आ जाऊंगी। इतनी देर में पीपाजी भी आगये सुनकर बहुत प्रसन्न हुये। जब रात को सीता जाने लगी तो जल बरसने लगा, पीपा जी स्वयं अपनी पीठ पर चढ़ा कर ले गए। जब सीता बनिए के हां पहुंची तो दर्शन से उसे ज्ञान होगया पूछा माता जी वर्षा में कैसे आना हुआ, उत्तर दिया मेरे स्वामी अपनी पीठपर लाएहैं। लज्जित होकर चरण पकड़ लिए पीपा ने दया करके दीक्षा दी और भव बन्धन से मुक्त कर दिया। एक तेलिन तेल लो, तेल लो, कहती हुई तेल बेचती थी, पीपा जी ने कहा, कि इस मुख से राम नाम लेने से बड़ी शोभा होती, इस पर तेलिन क्रोध करके बोली कि जब कोई मर जाता है तब राम नाम कहा करते हैं, जब वह अपने घर पहुंची तो पति को मरा हुआ देखा, पीपा जी के चरण पकड़ लिये और शरण हुई और समस्त कुटुम्ब ने राम नाम लेने का वचन दिया, पीपाजी ने मुरदेको जिला दिया।

एक बार साधु सेवा के निमित्त एक भैंस पीपा जी के पास आ गई, रात को चोर आए और भैंसको लेकर चले। पीपा जी को मालूम हुआ वह भैंस के बच्चे को लेकर चोरों को पुकारते चले कि बिना बच्चे के भैंस दूध न देगी इस को भी लेते आओ। चोर प्रभावित हुए और भैंस को उसी स्थान में बांध गए।

एक बार कुछ भक्तों का दिया हुआ रुपया और गाड़ी गेहूं पीपा जी ले कर आ रहे थे कि राह में चोर मिल गए उन्होंने गाड़ी छीन ली। इस पर पीपा जी रुपया भी उनको देने लगे कि बिना रुपए के घी, चीनी इत्यादि भोजन की सामग्री नहीं हो सकेगी। चोर लज्जित हो कर शरण हुए। एक महाजन का बहुत सा रुपया पीपा जी ने साधु सेवा में कर्ज कर लिया। वह महाजन रुपया का तकाजा करता तो पीपा जी आज कल बता दिया करते। इस पर बहुत समय बीत गया, बनिए ने निराश होकर एक दिन कड़े शब्दों का प्रयोग किया। पीपाजी ने उत्तर दिया हमको कुछ नहीं देना है। इस पर उस ने हाकिम से फर्याद की परन्तु जब हिसाब की बही दिखाने लगा तो बही कोरी थी, इसपर लज्जित हुआ। हाकिम ने दण्ड देना चाहा परन्तु पीपा जी ने छुड़ा लिया। वह चरणों में पड़ कर रोने लगा। बही पूर्ववत् हो गई और उसका सब रुपया चुका दिया। एक मनुष्य से गो-हत्या होगई, उस की बिरादरी वालों ने जाती से च्युत कर दिया। पीपा जी ने उस से राम नाम उच्चारण कराकर भगवत् प्रसाद कराया और भक्ति का उपदेश दे कर कहा कि तेरा प्रायश्चित्त हो गया। परन्तु जाति वालों ने उसे जाति में नहीं लिया इस पर पीपा जी ने पंचायत करके सब शास्त्रों से राम नाम की महिमा दर्शायी कि कोटि जन्म के पाप भी राम नामोच्चारण करने से छूट जाते हैं फिर एक गो-हत्या की क्या बात है? सब लोग आधीन हुए। एक राजा के यहाँ एकादशी को जागरण होता था, पीपा जी भी वहां उपस्थित थे। पीपा जी एकाएक उठ कर अपने हाथ मलने लगे, राजा ने कारण पूछा तो कहा कि द्वारका में भगवत् चन्दुए को आग लग गई थी उस को बुझाया है। राजा ने साण्डनी भेज कर समाचार मंगाया तो सत्य पाया और यह भी मालूम हुआ कि पीपाजी प्रत्येक एकादशी को जागरण में वहां होते हैं। ऐसे चरित्र पीपाजी के अनेक हैं कि जो विश्वास से ही समझ में आ सकते हैं और जो लोग इस रहस्य को समझते हैं कि भगवान् और भक्त में अन्तर नहीं है वही इन में प्रीति कर सकते हैं। बात यथार्थ है भगवान् सदैव अपने भक्तों के अधीन रहते हैं।

(सम्पादक)

पुरुषार्थ और प्रारब्ध

प्रारब्ध और पुरुषार्थ का परस्पर में ऐसा घनिष्ट सम्बन्ध है कि यह निर्णय करना कि प्रारब्ध श्रेष्ठ है अथवा पुरुषार्थ अति कठिन हो जाता है। प्रारब्ध और पुरुषार्थ परस्पर में एक दूसरे पर अवलम्बित हैं बिना प्रारब्ध के पुरुषारर्थ असम्भव है और बिना पुरुषार्थ के प्रारब्ध नहीं हो सकती। अतः जिस प्रकार से यह निर्णय करना कठिन है कि पहले बीज बना या वृक्ष, क्योंकि बिना वृक्ष के बीज की उत्पत्ति असम्भव है ऐसे ही बिना वृक्षके बीज की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इसी प्रकार प्रारब्ध और पुरुषार्थ की समस्या को सुलझाना भी कठिन है। किसान खेत में जैसा बीज बोता है वैसा ही फल पाता है इसी प्रकार से पुण्य अथवा पापका उचित फल कर्ता को मिलता है। जैसे बीज के बिना खेत को जोतना निष्फल जाता है ऐसे ही पुरुषार्थ बिना प्रारब्ध भी कुछ फल नहीं देता। खेत को पुरुषार्थ कहते हैं और बीज को प्रारब्ध। क्षेत्र और बीज इन दोनों के मेल से ही उत्तम धन धान्य की उत्पति होती है। मनुष्य जो कुछ करता है उसका फल उसको अवश्य भोगना पड़ता है। शुभ कर्म करने वाले मनुष्यको शुभ फल मिलेगा और अशुभ कर्म करने वाले को अशुभ यदि मनुष्य कर्म ही न करेगा तो उसको भोगने को भी कुछ भी नहीं मिलेगा। तपश्चर्या और संयम से परब्रह्म की प्राप्ति होती है परन्तु जो तप ही नहीं करेगा तो उसे ब्रह्म की प्राप्ति कैसे हो सकती है। अतः जो जब कर्म करेगा तब ही दैव उसे फल दे सकता है अकर्मण्य को दैव भी कुछ भी फल नहीं देसकता। ब्राह्मण तपश्चर्या से, क्षत्रि पराक्रम से, वैश्य पुरुषार्थ से और शूद्र सेवा से कीर्त्ति का भागी होता है। परन्तु जो इन कर्मों से रहित हैं उनको कीर्त्ति कहा से मिल सकती है। यदि इस संसार में कर्म का फल मनुष्य को न मिला करे तो सब कर्म निष्फल हो जावें और सब मनुष्य देव के आसरे रह कर कायर बन जावें।

उद्योगिनं पुरुष सिंह मुपैति लक्ष्मिः।
दैवेन देय मिति का पुरुषा वदन्ति॥

उद्योगी पुरुष ही अपने पुरुषार्थ से धन धान्य से भरपूर होते हैं। जो प्रारब्ध में होगा तो मिल जायगा ऐसे वचन तो कायर पुरुषों के होते हैं यदि सिंह प्रारब्ध के भरोसे

पर ही एक स्थान में पुरुषार्थ हीन होकर बैठ जावे तो कदापि भी उस पुरुषार्थ हीन सिंह के मुख में आप ही आप मृग नहीं चले जावेंगे। और तो क्या सामने रक्खा हुआ भोजन भी हाथ के उद्योग के बिना कदापि मुख में आप ही आप प्रवेश नहीं कर जायगा। मुख में रक्खा हुआ भोजन भी बिना पुरुषार्थ किये कण्ठ से नीचे नहीं उतर सकता। परन्तु इससे यह कदापि भी नहीं समझना चाहिये कि दैव कुछ भी नहीं है। नहीं नहीं यह सारा जगत् दैवाधीन है। परन्तु यदि दैवाधीन है तो कर्म की उत्पति किस प्रकार हो सकती है? उत्तर यह है कि संसार में प्रत्येक मनुष्य को कुछ न कुछ करना पड़ता है। "नहीं कश्चित् क्षण मपि जातु तिष्ठत्य कर्म कृत"। इस भगवद्वाक्यानुसार, प्रत्येक प्राणि को कर्म करने पड़ते हैं। मनुष्य जो कुछ भी शुभ अथवा अशुभ कर्म करता है तो उसके शुभाशुभ कर्म का फल उसे इस लोक में मिलता है। तैसे ही स्वर्ग लोक में भी धर्म कर्म करने से बहुत लाभ होता है।

आत्मैव ह्यात्मानो बन्धुरात्मैव रिपु रात्मनः।
आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी कृतस्याप्य कृतस्यच॥

अपना आत्मा ही अपना बन्धु है और अपना आत्मा ही अपना शत्रु है, तैसे ही अपने कृत और अकृत कर्म का भी अपना आत्मा ही साक्षी है। पाप करने पर भी यदि अधिक मात्रामें पुण्यकर्म किया जाय तो वह किया हुवा पाप कर्म किया हुवा उस पुण्य के प्रभाव से नष्ट होजाता है। ऐसे ही यदि पाप कर्म अधिक हैं तो वह किये हुये पुण्य कर्मों को दबा लेंगे।

अश्वत्थामा च रामश्च मुनिपुत्रौ धनुर्धरौ।
नगच्छतः स्वर्ग लोकं सुकृते नेह कर्मणा॥

अश्वत्थामा और परशुराम दोनों ही मुनिपत्र तथा धनुर्धारी थे। परन्तु वह अपने कर्मों के कारण स्वर्ग में न जासके।

अग्नि की छोटी सी चिन्गारी पवन से बहुत बड़ी हो जाती है ऐसे ही छोटे से छोटा प्रारब्ध कर्म की सहायता से बहुत बड़ा हो जाता है। जिस प्रकार दीपक में तैल न भरने से वह आप ही शान्त हो जाता है उसी प्रकार पुरुषार्थ न करने से दैव भी शान्त हो जाता है। दुर्योधनादि ने पाण्डवों का राज्य छीन लिया था उसको पाण्डवों ने दैव से नहीं प्राप्त किया परन्तु भुजबल से ही प्राप्त किया। अतः इन सब बातों से यह निष्कर्ष निकलता है कि संसार में दैव पुरुषार्थ के बिना पंगु है। अनुद्योगी पुरुष को दैव कोई किसी प्रकार की भी सामग्री नहीं प्राप्त करा सकता। जो कायर पुरुष "दैव से अमुक वस्तु की प्राप्ति होगी मुझे यत्न करने की क्या आवश्यकता है ऐसा कहते हैं उन का इस संसारमें जीवन ही व्यर्थ है। वह अय-स्कार की धौंकनी की भान्ति इस संसार में श्वांस लेते हुए मृतक के समान ही है। ऐसे

कुमार्ग गामी पुरुष को दैव सन्मार्ग में कदापि भी नहीं ले जा सकता क्योंकि अकेले दैव में कोई प्रभुत्व नहीं है। दैव तो गुरु के पीछे चलने वाले शिष्य के समान है कर्म के पीछे पीछे चलता है। अतः प्रत्येक मनुष्य को कर्म करना चाहिये वह कर्म भी कैसा हो कि निष्काम।

भगवान् गीता में कहते हैं:-

अनाश्रितः कर्म फलं कार्यं कर्म करोतियः।
स सन्यासी च योगी च न निरग्नि र्न चाक्रियः।

जो कर्म के फल कर आश्रित न हो कर केवल अपना कर्तव्य जान कर्म करता है वही सन्यासी और योगी है।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणी सङ्गंत्यक्त्वा करोतियः।
लिप्यते न स पापेभ्यो पद्म पत्रमिवाम्भसा॥

जो आसक्ति त्याग कर सब कर्मों को ईश्वर में अर्पण करते हुये करता है वह जिस प्रकार जलसे कमल पत्र लिप्त नहीं होता उसी प्रकार पाप से लिप्त नहीं होता। अतः प्रत्येक मनुष्य को उचित है कि सब कर्मों को वासुदेव में अर्पण करके सद्गुरु महात्माओं की उपासना करे इससे जैसे वृक्ष के मूल में जल देने से वृक्ष के सम्पूर्ण भाग शाखा पत्रादि स्वतः ही वृद्धि को प्राप्त होते हैं ऐसे ही ईश्वरार्पण सब कर्म करने से मोक्ष पर्यन्त सब सामग्रियां आप से आप मिलती हैं।

याज्ञ वल्क्य का जनक को उपदेश।

पष्ठाङ्क से आगे।

'तस्य वा एतस्य पुरुषस्य द्वएवस्थाने भवतः इदं च परलोक स्थानं चसन्ध्यं तृतीयं'। इसके दो ही स्थान इन दोनोंमें से कभी जाग्रत और जागृत से कभी स्वप्न में आता हुवा अवस्थाओं से भिन्न प्रतीत होता हुवा यह आत्मा स्वयं ज्योति स्वरूप है जैसे कर्म करता है वैसा जन्म धारण करता है और उसी के अनुसार सुख दुःख का भोक्ता होता है जाग्रत अवस्था की वासनाओं द्वारा स्वप्न में नाना विध रचना करता हुवा सुख दुःखादि का अ भव करता है परन्तु अपने स्वरूप से भिन्न इस अवस्थामें और कोई ज्योति नहीं होती, नतत्ररथान रथ योगाः न पन्थानो भवन्त्यथ रथा न रथ योग्यान् पथः सृजते, इस अवस्था

में रथ घोड़े और उनके चलने योग्य मार्ग नहीं होते पर तौभी वह जाग्रत वासना के प्रभाव से पदार्थोंकी कल्पना करलेता है । उसी प्रकार "न तत्रानन्दाः मुदः प्रमुदो भवन्त्यथानन्दान् मुदः सृजते" जाग्रत सम्बधि आनन्द हर्ष भोजनादि से प्रसन्नता आदि कुछ नहीं होते परन्तु कल्पना कर लेता है, 'नतत्र वेशान्ताः पुष्करिण्य-श्रवन्तो भवन्त्यथ वेशान्ता पुष्करिण्यो स्रवन्त्य सृजते सहि कर्त्ता क्षुद्र नदिये, तड़ाग बड़ी नदिये इत्यादिपदार्थ नहीं होते पर वह आत्मा इस सारे को वासनासे रच लेता है इसमें यह प्रमाण है:-

स्वप्नेन शारीरमभि प्रहत्या सुप्तःसुप्ता नाभिचाकशीति । शुक्र मादाय पुनरेति स्थानं हिरण्यमयः पुरुष एक हंसः ॥ प्राणेन रक्षन्न वरं कुलायं बहिष्कुलायादमृतश्चरित्वा । स ईयते मृतो यत्र कामं हिरण्य मयः पुरुष एक हंसः ॥

स्वप्नसे कल्पित पदार्थोंको नष्ट कर पुनः अपने इसी प्रकाश रूप से जाग्रत अवस्था को प्राप्त होता है यह ज्योति स्वरूप निर्मोही हो जाता है जहां इसकी मर्जी है जाग्रतादि अवस्थाओं में गमन करने से इसको हंस कहते हैं जिस प्रकार देश देशान्तरो में हंस गमन करके पुनः अपने घोंसले में आकर विश्राम पाता है इसी प्रकार यह एक हंस पांच प्राणों के द्वारा अपने शरीर की रक्षा करता हुआ स्वप्न से पुनः जाग्रत में आता है:-

स्वप्नान्त उच्चावच मीयमानो रूपाणि देवः कुरुते बहूनि । उते स्त्रिभिः सह मोद मानो जक्षदुतेवापि भयानि पश्यन् ॥

और स्वप्न में देव मनुष्य पशु पक्ष्यादि नाना प्रकार के रूपों की कल्पना करता हुआ कभी स्त्रियों के साथ आनन्द को प्राप्त होता है कभी अन्य सम्बन्धियों के साथ भोजनकरता हुआ हंसता है और कभी भय को प्राप्त होता है इस प्रकार लोग इस आत्मा की स्वप्न की रचना को जानते हैं और इसकी स्वयं ज्योति का विवेक नहीं कर सकते कई वैद्य अर्थात् चिकित्सक कहते हैं कि गाढ निद्रा में सोये हुवे पुरुष को सहसा न जगावें क्योंकि बलात्कार जगाने से किसी इन्द्रिय की मात्रासूक्ष्म शक्ति के साथ न ला-सकने के कारण कई प्रकार के शरीर सम्बंधि विकारों से आर्त होजाता है जिसकी चिकित्सा करनी कठिन होती है । कई लोगों का कथन है कि जीव जाग्रत देश सम्बन्धी पदार्थों को ही स्वप्न में देखता है । वासनामय पदार्थों को नहीं । परन्तु यह कथन ठीक नहीं क्योंकि इस में लिंग शरीरको स्थूल शरीर से बाहर मानना पड़ेगा । अतः पुरुष को स्वप्न में ज्योति मानना ही ठीक है - हे राजन् ! निश्चय करके यह स्वप्नावस्था का साक्षी आत्मा स्वयं ज्योति स्वरूप सम्यक् प्रकार पुण्य पाप के फल रूपी सुख दुख को भोग कर सुषुप्ति में आता है और वहाँ इन्द्रियों के शान्त हो जानेके कारण परमानन्द का अनुभव करता हुआ सुषुप्ति से स्वप्न को प्राप्त होता है । इस प्रकार अवस्थाओं को भोगता हुआ आप भी असंग रहता है । हे राजन् इस रीति से यह आत्मा जाग्रतादि

वस्था में नाना प्रकार के विषय भोग से शांत हुआ अपने पुण्य वश से स्वप्न को न प्राप्त होकर सुषुप्ति को प्राप्त हो परमानन्द का अनुभव करता है। परन्तु तो भी इस के रूपों में कोई विचार नहीं होता। तब राजा जनक ने याज्ञवल्क्य को बहुत गौ दान कीं, और कहा कृपा करके और भी उपदेश करें।

ऋषि बोले हे राजन्! "तद्यथा महामत्स्य उभे कूले अनुसञ्चरति पूर्वं चापरं चैवमेवायं पुरुषः एतावुभावन्तावनु संचरति स्वप्नान्तंच बुद्धान्तं च" जिस प्रकार महामत्स्य नदी की लहरों से इन के दोनों किनारों पर विचरता है इसी प्रकार यह पुरुष कभी सुषुप्ति और कभी जाग्रतावस्था को प्राप्त होता है। तद्यथास्मिन्नाकाशेश्येनो वा सुपर्णो विपरित्य श्रान्तः संहत्यपक्षौ संल्लयैव ध्रियतएव मेवायं पुरुष एतास्मान्ताय धावति यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति" जिस प्रकार आकाश में वेग वाला पक्षी उड़ कर शान्त हुवा हुवा अपने दोनों पक्षों को संकोड़ कर घोंसले में प्रवेश करता है इसी प्रकार यह पुरुष जागृत और स्वप्न में भ्रमण कर थकित होने के कारण सुषुप्ति को प्राप्त होता है जहां सोया हुवा किसी पदार्थ की कामना नहीं करता। जो नाड़ियां बाल के सहस्र भाग के समान अत्यन्त सूक्ष्म हैं और जिन के शुक्ल, नील, पीत, हरित तथा लोहित वर्ण वाला भुक्त अन्न का परिणाम रूप रस बहता है। इन से संचारण करता हुवा आत्मा जब स्वप्न को प्राप्त होता है तो इस को मानो कोई तस्करादिक मार रहे हैं, कोई वश कर रहे हैं, कोई हाथी की भान्ति भाग रहे हैं तथा कोई गढ़े में गिरा रहे, इस प्रकार इस को जैसे जैसे जाग्रतावस्था में संस्कार होते हैं ऐसे ही महा अविद्या से सुख दुखादि को मान लेता है परन्तु "यत्र देव इव राजते वाहमेवेदं सर्वोऽस्मीति मन्यते सोऽस्य परमोलोकः" जब यह जान लेता है राजा की तरह यह सब मैं ही हूं तब देखना, किन्तु राजा की भान्ति परमानन्द से देदीप्यमान होता है। यही इस का परमलोक अर्थात अन्तःपुर है। हे राजन! "तद्यथा प्रियया स्त्रिया सम्परिष्वक्तो न बाह्य किंचन् वेद नान्तरम्" जिस प्रकार कोई पुरुष अपनी प्रिय स्त्री के साथ आनन्द में मग्न होकर बाहर और भीतर के किसी विषय को नहीं जानता हुवा तन्मय हो जाता है "एवायं पुरुषः प्राज्ञेनात्मना सम्परिसक्तो न बाह्य किंचन् वेद नान्तरम्" इसी प्रकार यह जीव प्राज्ञ परमात्मा अर्थात् अपने स्वरूप के साथ मिल कर अपने धर्म को धारण कर शान्त स्वरूप को अनुभव करता हुआ बाह्य आन्तर्य किसी भी विषय को नहीं जानता। निश्चय करके यह अवस्था शोक से रहित होती है। क्योंकि उस समय सांसारिक कामनाओं से लिपायमान नहीं होता। "अत्र पिता अपिता भवति माता अमाता भवति लोका अलोकाः वेदा अवेदाः अत्रस्तेनोस्ते नो भवति भ्रूणहाऽभ्रूणहा, चाण्डालोऽचाण्डालः, पौल्क-

सोऽपौल्कसं, श्रवणोऽश्रवणं, तापसोऽतापस नन्वागतं पुण्येन नन्वागतं पापेन तीर्णोहि तदा सर्वान् शोकान् हृदयस्य भवति" सुषुप्ति मोक्ष और समाधि में जीव को ब्रह्मरूपता प्राप्त होती है जैसा कि कपिल भगवान् सांख्य में कथन करते हैं "समाधि सुषुप्ति मोक्षेषु ब्रह्मरूपता" यहां माता अमाता हो जाती है, पिता पिता नहीं रहता, लोक लोक नहीं रहते, वेद वेद नहीं, चोर चोर नहीं, ब्रह्महत्यारा ब्रह्म हत्यारा नहीं, वर्ण संकर वर्ण संकर नहीं, संन्यासी संन्यासी नहीं, तथा तपस्वी तपस्वी नहीं रहता, क्योंकि इसके ब्रह्मानन्द में नितांत मग्न रहने से माता पिता आदिक ज्ञान उस का रूप ही हो जाता है। न यहां पाप आते हैं न पुण्य वह हृदयके सब शोकोंसे पार हो जाता है। "स यथा शकुनि सूत्र यन्त्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं पतित्वा नियत्रायतनमलब्ध्वा बन्धमेवो पश्यत एव मेवखलु सोम्यै तन्मनो दिशं दिशं पतित्वा नियत्रायतनमलब्ध्वा प्राणमेवोपश्रयते प्राण बन्धने हि सोम्य मन इति" छान्दोग्योपनिषद् में आरुणि उद्दालक अपने प्रिय पुत्र श्वेत केतु के प्रति कथन करते हैं कि "हे सौम्य ! स्वप्नान्तं मे विजानीहीति" मुझ से सुषुप्ति अवस्था की विद्या जानो। "यत्रैतत्पुरुषः स्वपितिनाम सत्ता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति" जिस काल में यह पुरुष सो जाता है उस समय सत्ता ब्रह्म के साथ मिल जाता है। अर्थात अपने आप को प्राप्त हो जाता है। इस कारण इस को स्वपिति कहते हैं क्योंकि अपने स्वरूप में स्थित होता है जैसे वह पक्षी सूत से बन्धा हुआ चारों ओर गिर कर अन्यत्र स्थान न लाभ करता हुआ बन्धन को ही आश्रय करता है उसी प्रकार निश्चय करके हे सौम्य ! यह मन प्राणों से बन्धा हुआ यहाँ देखता हुआ नहीं देखता, सूंघता हुआ नहीं सूंघता रस लेता हुआ नहीं लेता, बोलता हुआ नहीं बोलता, सुनता हुआ नहीं सुनता, मन से संकल्प नहीं करता और स्पर्श नहीं करता, जो वह परमात्मा से भिन्न किसी अन्य विषय को नहीं जानता, गन्ध ग्राहक शक्ति रसात्मक शक्ति वाक् शक्ति श्रवण शक्ति मननात्मिका शक्ति, स्पर्श ग्राहक शक्ति, विज्ञानात्मक शक्ति, लोप नहीं हो जाती किन्तु इस अवस्था में आत्मा से अतिरिक्त गन्ध, रस, शब्द स्पर्श रस आदि कोई नहीं रहता, सब आनन्द स्वरूप आत्मा ही में मिल जाता है। जिस अवस्था में इन्द्रियों के विषय बाह्य पदार्थ उपस्थित रहते हैं "तत्रअन्योऽन्यत्पश्येदन्योन्यज्जिघ्रेदन्योन्यद्रसयेदन्योन्यद्वदेदन्योन्च्छृणुयादन्योन्दन्मन्वीतान्योन्यत्स्पृशेदन्योन्यद्विजानीयात्", उसी अवस्था में दूसरा दूसरे को देखता है, सूंघता है, रस लेता है, कथन करता हैं, सुनता है, मनन करता है, स्पर्श करता है, और दूसरा दूसरे को जानता है परन्तु यहाँ कोई आत्मा से भिन्न नहीं रहता।

अथ पञ्च भ्रम निवर्तकं दृष्टान्त पंचकम् ।

यत्सत्येन जगत्सत्यं यत्प्रकाशेन भातियत् ।
यदानन्देन नन्दन्ति तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
सच्चिदानन्दकन्दाय जगदंकुर हेतवे ।
सदोदिताय पूर्णाय नमोऽनन्ताय विष्णवे ॥

जीवात्मा परमेश्वराद्भिन्नः ।

जीवात्मा परमेश्वर से भिन्न है ।

एकान्त्वेन प्रतीयमानं कर्तृत्वादि वास्तवम् ।

आत्मा में प्रतीत होता हुवा कर्तापन आदि वास्तविक सिद्धान्त ही है ।

शरीरत्रयावच्छिन्नात्मा सङ्गी ।

तीनों शरीरों से अवच्छिन्न (युक्त) हुवा आत्मा सङ्ग वाला है ।

जगत्कारणत्वेन ब्रह्मणो विकारित्वम् ।

जगत् कारण होने से ब्रह्म के विकार भाव है ।

कारणाद्भिन्नस्य प्रपञ्चस्य सत्यत्वम् ।

कारण से भिन्न हुआ प्रपञ्च जगत का भी सत्यपना है । इस प्रकार से यह पांच भ्रम कहलाते है ।

बिम्ब प्रति बिम्ब दृष्टान्तेन भेद भ्रमो निवर्तनीयः ।

बिम्ब प्रतिबिम्ब के दृष्टान्त करके भेद भ्रम निवर्तन करना चाहिए । जैसे सूर्य के बिम्ब से जल में गिरा हुआ प्रतिबिम्ब भिन्न नहीं है । ऐसे भेद भ्रम दूर करना ।

स्फाटिक लोहित दृष्टान्तेन पारमार्थिक कर्तृत्व भ्रमो निवर्तनीयः ।

मणि में अर्थात् काँच में जैसे दूसरी वस्तु का लाल रङ्ग दीखता है इस दृष्टान्त करके आत्मा का कर्तापन भ्रम दूर करना ।

सूर्याग्न्युत्पादकादर्श दृष्टान्तेन विकारित्व भ्रमो निवर्तनीयः ।

जैसे सूर्य को और अग्नि को उत्पन्न करने वाला शीशा चकमक इन दोनों के योग से अग्नि उत्पन्न करता है वहां सूर्य कारण है वह विकार रहित है विकारवान शीशा ही है ऐसे मायाही विकार वाली है इस दृष्टान्त करके विकारित्व भ्रम दूर करना ।

घटाकाश दृष्टान्तेन संगीति भ्रमो निवर्तनीयः ।

जैसे घट के आकाश में महाकाश बन्धा हुवा नहीं है इस घटाकाश दृष्टान्त करके सङ्गित्व भ्रम दूर करना ।

सुवर्ण कटक लोह खड्गादि दृष्टान्तेन कारणाभिन्नत्वेन प्रतीयमान प्रपञ्चस्य सत्यत्व भ्रमो निवर्तनीयः ।

सुवर्ण के कुण्डल, लोहे की तलवार, सोने और लोहे से भिन्न सत्य नहीं है प्रत्युत सोना और लोहा रूप ही है। इस दृष्टान्त करके कारण से भिन्न पना करके प्रतीत होते हुए जगत का सत्यत्व पने का भ्रम निवर्तन करना ।

ब्रह्मणि जगत भ्रान्त्या प्रतीयते इत्यत्र शुक्तौ रजतं रज्वौ सर्पः स्थाणौ पुरुषः गगने नीलतादि मरीचिकायां जलम् ।

ब्रह्म विषे जगत् भ्रांति करके प्रतीत होता है। इस में जैसे सीप में चाँदी, रज्जु में सर्प, स्थाणु अर्थात् खम्भमें पुरुष, आकाश में नील वर्णादि रङ्ग, मरीचिका अर्थात् चमकते हुए कङ्कर रेत में जल, यह सब मिथ्या है इसी भान्ति जगत भी मिथ्या है। इस प्रकार के विचार द्वारा जब जीव जान लेता है कि जगत मिथ्या है। और मैं वही हूं तब उस का सम्पूर्ण दुख निवृत्त हो जाता है। जैसा कि:-

अनादि मायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुद्धयते ।
अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुद्धयते तदा ॥

अनादि काल से प्रबल माया मोह करके सोया हुआ अर्थात् यह मेरा है मैं इस का हूं ऐसे प्रकृति के सम्बन्ध में वर्णाश्रम के अभिमान द्वारा सुखी हूं, दुःखी हूं, दीन हूं, समृद्ध हूं इत्यादि स्वप्नों को देखता हुआ जब जब जागता है अर्थात् जब अपने स्वरूप को पहचानता है तब अज, अनिद्र, अस्वप्न और अद्वैतात्मा अपना आपा सब को जानता है ।

प्रपञ्चो यदि विद्येत निवर्तेन्नात्र संशयः ।
मायामात्र मिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः ॥

प्रपञ्च मिथ्या ज्ञान आदि विद्यमान हैं तो निःसंदेह निवर्त्त भी होंगे । क्योंकि जबतक जीव माया मोह में बद्ध है तब तक द्वैत है परमार्थ में तो केवल अद्वैत ही है ।

शाश्वत जीवन।

ले० श्री रामचन्द्र जी जज एम० ए०

गताङ्क से आगे।

उधर से किलाँची की छावनी सामने आ गई प्रातः काल सिपाही शस्त्र बान्धे परेट कर रहे थे, उनको देखकर कृष्णा जी बोली, सूर्य भगवान् को देखिए वह अपने तेज और प्रभाव से सर्व संसार की पालना करते हैं। और मनुष्य कल्पित शस्त्र जो उन्हीं की किरणों में चमक रहे हैं संसार का संहार करते हैं। मनुष्य कैसे अधर्मी और दुष्ट हैं। समस्त जन समूह इस बात की प्रतिज्ञा क्यों नहीं कर लेते कि आपस में कभी द्रोह नहीं करेंगे। यदि कोई विवाद हो तो पंच निर्णय नहीं कर सकते, कैसा शोक है कि राजा लड़े, प्रजा एक दूसरे का गला काटे। मैं ने उत्तर दिया, मैं आप से एकमत हूं। मुझे राज विषय में यह मिथ्याचार भी भला नहीं लगता कि एक ओर तो मन्त्री यह उपदेश करते फिरते हैं कि कलह अच्छी नहीं और दूसरी ओर से शस्त्र जहाज, गोले, वा रुद टारपेडो आदि बना २ कर प्रजा का लहू पीते हैं जर्मनों ने तो ऐसा ही किया था। अपनी रक्षा के लिए तो सब को थोड़ा बहुत समिधान करना ही पड़ता है, परन्तु देश का सर्वस्व लड़ाई की तइयारियों में लगा देना ऐसा कर्म करके देशाधिकारियों को लज्जा आनी चाहिए। कृष्णा जी ने कहा, यह आप कैसे कह सकती हैं कि लड़ाई के लिए उद्यत नहीं रहना चाहिए। जर्मनी के ३० अत्याचार के परिणाम से वे जाने हम कब छूटेंगे। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह समस्त ब्रह्मांड कलह के पीछे पड़ा हुआ है छोटे से छोटे जीव भी एक दूसरे से लड़ते रहते हैं। हमारी अपनी नाड़ियों विषात्मक वा पवित्र अंकुर (जर्म) हैं जो निरन्तर एक दूसरे को दमन करने का यत्न करते रहते हैं जब समस्त भाव की घटना ही ऐसी है तो पुरुष क्योंकर बच सकता है। यह जीवन भी तो सत्य और असत्य के नित्यस्थायी संग्राम का उदाहरण है और यदि यह युद्ध न लगा रहे तो जीवन का और कोई अर्थ ही नहीं दिखाई देता। जिस आत्मा में यह संदेह नहीं रहता उसको निर्वाण की प्राप्ति हो जाती। जब निर्वाण हो गया तो फिर वैसा जीना वैसा ही मरना। यह विवाद तो अन्त पर्यन्त ऐसा ही लगा

रहेगा। मैं ने कहा, इस का तो अन्त ही कोई नहीं।

कृष्णा जी मेरी ओर प्रेम और दया से देख कर कहने लगीं, यह तुम्हारा विचार है।

मैं ने उत्तर दिया, यह मेरा विचार नहीं, परन्तु मेरा ज्ञान है।

कृष्णा का स्वभाव बहुत प्यारा था और उन की बुद्धि बहुत चैतन्य थी परन्तु वह गहरी सोच से जी चुरा जाती थीं। वह ऐसी बातें सुन कर चकित और आकुल हो जाती थीं, उन के मुखपर एक अनिश्चित रूप जैसा छा जाता था। यह रूप मैंने पहले भी कई बार देखा था इस समय पर भी उनके भोले मुख पर वही भाव आगया और वह मुझसे हंस कर कहने लगी, अच्छा चलो यह युद्ध सदा ही होता रहेगा तो क्या हमारी आत्मा थक न जायगी।

मैंने प्रश्न किया, क्या आप यह मानतीं हैं कि ईश्वर का सामर्थ्य इतना ही है कि भगवान् श्रमाकुल होकर अपना कर्म त्याग देंगें।

आप तो प्रति दिन गीता का पाठ करती हैं फिर भी ऐसा कहतीं हैं। भगवान् ने तृतिय अध्याय में ही क्या कहा है।

उत्सीदेयुरिमेलोका न कुर्या कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्त्तास्या मुपहन्या मिमाः प्रजाः॥

यह सुन कर भी कृष्णा जी ने चिन्ता प्रगट नहीं की और प्रफुल्लित हो कर बोली, मैं परमात्मा का निरादर करना नहीं चाहती परन्तु शेष ब्रह्मांड की भी यदि यही दशा है जो इस पृथ्वी की है तो इन असंख्य सृष्टियों के असंख्य जन समूह प्रतिक्षण ऐसी ही वस्तु मांगते रहते होंगे जिन के वह योग्य नहीं जब उनको वह वस्तु नहीं मिलती तो बड़े आर्त्त होकर, रोकर चिल्ला कर, परमात्मा को अवश्य ही थका देते होंगे।

मैंने उत्तर में कहा बहन जी यह हंसने की बात नहीं। भगवान् ने जो कहा है "उपहन्यामिमाः प्रजाः,, इस के भी कभी आप ने अर्थ विचारे हैं। परमात्मा से कर्म रूपी संकल्प से ही तो विश्व की उत्पत्ति हुई है जो श्रमाकुल हो कर भगवान् अपने कर्म को त्याग दें तो वह कारण जिसका आप यह फल देख रहीं हैं वह नहीं रहेगा। जब कारण न रहा तो कार्य कहां से हो सकता है। इन बातों का तो प्रत्येक स्त्री पुरुष को भली प्रकार विचार करना चाहिये। मेरी इतनी बात सुन कर कृष्णा जी ने प्यार से मेरे गले में भुजा डाल कर कहा।

ईश्वर ने तुम्हारी प्रकृति अद्भुत बनाई है। तुम इन निगूढ विषयों के पीछे पड़ी रहती हो। भला यह बहुतअच्छा है जो तुम राय लक्ष्मीदास के संग चली हो। वह शीघ्र ही तुम्हारी मंडल स्थित बुद्धि को पृथ्वी पर खींच लायेंगे। तुम को धातु

खेप बूटी इत्यादिक सर्व रोग शोधक औषधियों को छोड़ और किसी ज्ञान के विषय में सुनने को भी नहीं मिलेगा। जब तक जाओ तो मेरे पास किराँची आ जाना तब तक तुम्हारी मति भी सामान्य और सविवेक हो जायगी।

मैं थोड़ी सी मुस्कराई! कृष्णाजी सामान्यता और विवेकता के द्वन्द को कभी नहीं तोड़ती थीं वह वह कहती थीं कि सामान्य भाव से विवेक पृथक नहीं हो सकता। वास्तव में देखिये तो सामान्य क्रिया वह है जो मनुष्य शरीर के अर्थ पशुवत् हर समय करता रहता है और उस का विवेक से इतना ही सम्बन्ध है जितना कि कमानी से चली हुई घड़ी का सूर्य की अति मात्र बलवत्ता से है। विवेक निर्मल बुद्धि का फल है। जीव को विवेक से ही ज्ञान उत्पन्न होता है और इस ज्ञान को माता स्थूल सृष्टि तक ही नियत नहीं किन्तु वह बाह्य स्थित कार्य और आकार को भेदन करती हुई उस मूल कारण तक पहुंच जाती है जो इस कार्य और आकार का कारक है। हमारी यात्रा पूर्ण होने वाली थी मैं इस लिए और न बोली और मुझे यह विचार करके भी हर्ष हुआ कि मेरी प्यारी बहन जी को यह सन्तोष रहेगा कि इस शास्त्रार्थ में उन को ही जय हुई।

गाड़ी किरांची स्टेशन के निकट पहुंच गई इतने में बाहर खड़ी हुई दो मोटरों की झलक जो दिखाई दी तो कृष्णा जी उछल पड़ी और कहने लगीं कि "लो पिता जी आप मुझे लेने आ गए" इतने में गाड़ी ठहर गई स्टेशन पर राय लक्ष्मीदास एक दो नौकरों को लिए खड़े थे। कृष्णा जी के पिता भी आए हुए थे। पहले हमारा अस्बाब उतार कर नौकर मोटर पर ले गए। नगर में ठहरने का हमारा विचार नहीं था इस लिए मैं अपने भाई से वहीं से विदा हुई और उनकी कृष्णा जी को सौंपनी कर दी, कि वह उनको नगर दिखा कर दूसरे दिन घर भेज दें। स्टेशन से बाहर जाकर मैंने इन्दुमति जी को मोटर में ही जाकर गले लगाया। वह तकिए लगाए घुस्सा कम्बल ओढ़े एक ओर बैठी हुई थीं। मैंने कारण पूछा तो बोलीं कि पिता जी बहुत सवेरे चल पड़े थे। इस प्रान्त की वायु भी कुछ शीतल है मैं ने सोचा कि कहीं खाँसी न हो जाय। कहो आप को रेलवे में कोई क्लेश तो नहीं हुआ। आप के मुख पर तो यात्रा का श्रम तक भी नहीं दिखाई देता। बड़े आनन्द में दिखाई देती हो।

इन्दुमति जी ने यह बात ऐसी कही मानो मैंने अपना शरीर रोग रहित रखने में भी कोई अपराध किया है किन्तु मैं ने केवल इतना ही उत्तर दिया, "आज का दिन कैसा अच्छा है आज तो प्रसन्न हुए बिना रहा ही नहीं जाता" इतना सुनकर इन्दुमति जी ठण्डी साँस ले मुस्करा पड़ी और मेरा हाथ पकड़ उन्होंने मुझे पास बिठा लिया एक दासी ने आकर उनका कम्बल उतार लिया और वह घुस्सा

सिर से पैर तक लपेट कर बैठ गई । मजूरनी सामने पैरों में बैठ गई । मोटर चलाने वाला राय लक्ष्मीदास और एक नौकर आगे की सीट पर बैठ गए । कृष्णा जी इन के पिता और मेरे भ्राता इतने में अपना अस्वाब रखवा पुनः हमारे पास आ गए । उन्होंने हमारा आमंत्रण किया, उधर मोटर वाले ने इन्जन चला दिया और हम वहां से विदा हुए ।

निरालंब उपनिषद् ।

शिव गुरु सच्चिदानंद मूर्ति निष्प्रपंच शांत, अधिष्ठान रहित तेज को नमस्कार है जो निरालम्ब का आश्रय करके अवलम्ब सहित का त्याग करता है, वह सन्यासी और योगी है, वह ही परम पद को प्राप्त करता है, अज्ञानी जीवों के दुःख की शांति के लिये जो ज्ञान कहने योग्य है उसको मैं वर्णन करता हूं। ब्रह्मक्या है? ईश्वर किस को कहें ? जीव, प्रकृति, परमात्मा, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, शमन, सूर्य, चन्द्र सुर, असुर, पिशाच, मनुष्य ,स्त्री, पश्वादि, स्थावर, ब्राह्मणादि जाति कर्म, अकर्म, ज्ञान, अज्ञान, सुख, दुःख स्वर्ग नरक बंध, मोक्ष, उपास्य, शिष्य, विद्वान्, मूढ़, आसुर,तप, परमपद, ग्राह्य, अग्राह्य, और सन्यासी किसे कहें ? तब ब्रह्मा ने कहा "महत, अहंकारपृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाशादि, अनेक रूप से, खंड के समुह से, और कर्म तथा ज्ञान से जिसका भास होता है, जो अद्वितीय है, अखिल उपाधि से रहित है, सब शक्तियों से आवृत है, शुद्ध, शिव, शांत,और निर्गुण होने से जो चैतन्य अनिर्वाच्य है सो ब्रह्म है ब्रह्म प्रकृति नाम की अपनी शक्ति का आश्रय करके लोकों को उत्पन्न करके अंतर्यामी भाव से प्रवेश करता है और ब्रह्मादिक की बुद्धि और इन्द्रियोंका नियामक होने से उसको ईश्वर कहते हैं । ब्रह्मा विष्णु ईशान और रुद्र आदि नाम रूप के कारण मैं स्थूल रूप से हूं इस प्रकार अज्ञान से जीव कहलाता है यद्यपि मैं जीव एक हूं तो भी अनेक देहो के भेद से जीव अनेक रूप से भासता है। ब्रह्म में से उत्पन्न हुये विविध विचित्र जगत को निर्माण करने वाली बुद्धि रूप जो ब्रह्म की शक्ति है उसको प्रकृति कहते हैं । देहादि के श्रेष्ठपने से ब्रह्म ही परमात्मा रूप से, ब्रह्मा रूप से, विष्णुरूप से, इन्द्र रूप से,शमन रूप से, चन्द्र, सुर, असुर, पिशाच, मनुष्य

स्त्री, पश्वादि, स्थावर और ब्राह्मणादि रूप से हैं। सब मात्र ब्रह्म है। उसमें किसी प्रकार विविध भेद नहीं है। चर्म रक्त, मांस, अस्थि, और जाति आत्मा की नहीं है। ये व्यवहार में कल्पना किये हुये हैं। क्रियमाण इन्द्रियों से मैं इस कर्म को करता हूं, इस प्रकार अध्यात्म निष्ठासे जो कर्म किये जाते हैं, उसको कर्म कहते हैं। कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि अहंकार से बन्ध रूप जन्मादि का जो कारण है और जो नित्य नैमित्तिक योग व्रत तप और दान में फलके साथ जोड़ता है यह अकर्म है। देहइन्द्रियों का निग्रह करने वाला सद्गुरु की उपासना से, श्रवण मनन, और निदिध्यासन से जो दृग् और दृश्य स्वरूप से है, जो सर्वान्तर रूप से रहता है, सब को समान रूप से है, जो घट पटादि के समान अधिकारी रूप से है और विकार में चैतन्य सिवाय कोई भी नहीं है इस प्रकार का जो साक्षात्कार है उसको ज्ञान कहते हैं। रज्जू में सर्प की भ्रान्ति के समान अद्वितीय, सब में ओत प्रोत और सर्वमय ब्रह्म में देव, पक्षि, स्थावर, स्त्री, पुरुष, वर्णाश्रम, और बंध मोक्ष रूप उपाधि से ज्ञान की जो अनेक रूप से कल्पना करने में आती है सो अज्ञान है। सच्चिदानन्द स्वरूप का ज्ञान होने से पश्चात् आनन्द रूप जो स्थिति है सो सुख है। अनात्मा रूप विषय का जो संकल्प है सो दुःख है। संतों का समागम सो स्वर्ग है। अनात्म रूप संसार का और विषयी जनों का जो संसर्ग है सो नरक है। 'अनादि वासना के कारण मैं जन्मा हूं' इत्यादि संकल्प सो बंध है। माता पिता, मित्र, स्त्री, लड़के, गृह वा आराम, क्षेत्रादिक में ममता से संसार का आवरण रूप संकल्प सो बंध है। देव और मनुष्यादिक की उपासना वाला काम संकल्प सो बंध है। यमादि अष्टांग योग का संकल्प सो बंध है। वर्णाश्रम धर्म कर्म का संकल्प सो बंध है। आज्ञा भय और संशय का संभव सो बंध है। योग, व्रत, तप, और दान में विधि और विधान के ज्ञान का संभव सो बन्ध है। मोक्षमात्र की इच्छा का संकल्प सो भी बंध है। संकल्प मात्र की उत्पत्ति सो बंध है।

नित्य और अनित्य वस्तु के विचार से अनित्य संसार का सुख दुःख विषय में और सब क्षेत्रों में रहने वाली ममता रूप बंधन का नाश सो मोक्ष है। सब शरीरों में रहने वाले चैतन्य ब्रह्म की प्राप्ति कराने वाला गुरु उपास्य है। विद्या से नाश होने वाले प्रपंच के कारण संस्कार वाला ज्ञानावशेष रूप जो ब्रह्म सो शिष्य है। सब के भीतर जो रहता है सो अपना चेतन्य स्वरूप है ऐसा जो जानने वाला है सो विद्वान् है। कर्तृत्वादि अहं भाव में जो रहता है सो मूढ है। ब्रह्मा विष्णु, ईशान, इन्द्रादिक के ऐश्वर्य की इच्छा से जो उपवास जप, अग्निहोत्रादिक करके आत्मा को संताप देने वाला है तथा अत्युग्र राग द्वेष, हिंसा और दंभादिक से युक्त जो तप करने वाला है सो असुर है। ब्रह्म सत्य रूप है जगत् मिथ्या

रूप है इस प्रकार के अपरोक्ष ज्ञानाग्नि से ब्रह्म आदिक ऐश्वर्य की आशा से युक्त संकल्प की उत्पत्ति रूप जो संताप सो तप है। प्राणेन्द्रियादि अन्तःकरण के गुणों से उत्कृष्ट सच्चिदानन्दमय नित्य मुक्त जो ब्रह्म स्थान सो परम पद है। देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित जो चिन्मात्र स्वरूप सो ब्राह्म स्वस्वरूप है, मायामय, बुद्धि, इन्द्रिय वा विषय रूप जगत् का सत्य रूप से जो चिंतवन है सो अग्राह्य है। सब धर्मों का त्याग करके ममता और अहंकार से रहित होकर ब्रह्म के शरण में जाना, तत्त्वमसि, "सर्वखल्विदं ब्रह्म" नेह नानास्ति किञ्चनः, इत्यादि महा वाक्यों के अनुभव वाला ज्ञान से "मैं ही ब्रह्म रूप हूं" इस प्रकार के निश्चय होने के पश्चात् निर्विकल्प समाधि से स्वतंत्र जो यति विचरता है वह ही सन्यासी, मुक्त, पूज्य, योगी, परमहंस पूत, वायु पूत होता है, उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती।

विविध समाचार।

बरेली के एक सात वर्ष के बालक की पूर्व स्मृति जाग उठी है। उस का रङ्ग सफेद है, कांटे छुरी से भोजन करता है, आंखे नीली हैं, बाल भूरे हैं और गर्दन पर बाई ओर गोली लगने का चिन्ह है। वह कहता है कि मैं अंगरेज था और १८ वर्ष की आयु में गोली से मार डाला गया था और आश्चर्य यह है कि पूर्व जन्म के चिन्ह इस जन्म के शरीर में भी मौजूद हैं।

मीर्जापुर परगना उरई में एक ओझी के घर उसका एक बालक है। उम्र अभी सिर्फ सात साल की है। इस ने खुरपी से छीलकर एक लकड़ी का बक्स तैयार किया है। मालूम होता है मानो रिन्दा फेरा गया है। तुलसी की लकड़ी की तस्बिजियां बनाई हैं और नक्काशी काढ़ी है। अपने लिए कपड़े की एक कमीज तैयार की है। चमार के औजार लेकर एक गुरगाबी जूता बनाया है। अपने हाथ से चारपाई बनाई और भरी है। ऐसा मालूम होता है कि यह पूर्व जन्म में कोई अच्छा कारीगर था। धनी लोगों और गुण ग्राहकों से क्या यह आशा की जावे कि वे ऐसे होनहार बच्चे की उचित शिक्षा का प्रबन्ध करावेंगे।

एक डाक्टर ने रोगियों के हृदय की गति को ग्रामोफोन की रिकार्ड में दर्ज कर लिया है। उन्हें (रिकार्डों को) वे भिन्न भिन्न रोगों के विशेषज्ञ डाक्टरों के पास डाक द्वारा भेजेंगे जिस से वे रोग का पता लगा सकें। आप ने एक ऐसा स्थेस्कोप (वह यन्त्र जिसे कान में लगा कर डाक्टर हृदय की गति देखा करते हैं) तैयार किया है जो गति को अच्छी तरह अनुभव कर सकता है और इस के द्वारा हृदय की गति बिल्कुल स्पष्ट रूप से

प्रकट हो जाती है। और मजा यह है, कि हृदय की गति रिकार्ड पर भी भर जाती है। इस यन्त्र की सहायता से धीमी से धीमी गति का भी ज्ञान हो जाता है। हृदय की गति को एक ही समय सुदूर स्थानों में ५०० डाक्टरों तक पहुंचाया जा सकता है। सम्भव है कि भविष्य में डाक्टर को बुलाने की आवश्यकता न रहे। बेतार यन्त्र के द्वारा रोगी की नाड़ी अथवा हृदय की गति डाक्टर के पास दिखा दी जायगी उसी के अनुसार उसकी चिकित्सा हो जाया करेगी।

रंगून के श्वे डागोन पगोडा मन्दिर में एक बर्मा निवासी ने पूजा करते समय अपनी मध्यमा अंगुली काट डाली किन्तु इतने पर भी वह ध्यान में बिल्कुल मग्न था। एक बार पहिले भी इस ने ऐसा ही किया था।

न्यूयार्क में एक संवाद दाता के कथन से ज्ञात हुआ है कि फिलडेल्फिया में १५ सौ वैज्ञानिकोंके सामने अपना भाषण देते हुये डाक्टर माइकेल बुपिनने यह प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध कर दिखाया है कि वायुगगन आदि जिनसे बेतार विज्ञ पूर्णपरिचित हैं, सूर्य एवं अन्य ग्रहोंके सन्देश हैं डाक्टर बुपिनने कहा कि संदेश से मेरा तात्पर्य विद्युत-आकर्षण शक्ति से है जो कि पृथ्वी तथा अन्य ग्रहोंके बीच विद्यमान है; और जो सामयिक भूकम्प विद्युत-प्रवाह और बेतार- यंत्र- ज्ञाति शब्द आदि द्वारा प्रदर्शित होता है। कुछ कालके अनन्तर यह सिद्ध हो जायगा, और मनुष्य मात्र इस संदेश के वास्तविक तात्पर्य को समझने लग जायगा। ग्रहोंसे बात चीत विषयक प्रश्नके सम्बन्ध में डाक्टरने कहा यह सन्देहजनक है कि मनुष्य की बुद्धि इस सीमा तक पहुंच सकेगी।

लीजिये अब कुत्ते को भी सिनेमा देखने का शौक लग गया। लीसेस्ट शायर में एक ऐसा कुत्ता है जो बिना सिनेमा देखे नहीं रहता। कमसे कम सप्ताह में एक बार तो वह कुत्ता अवश्य ही सिनेमा देखा करता है। परन्तु सिनेमा हाउस का घाटा इतना ही है, कि यह बिना टिकट लिये बैरंग जाता है — कहीं २००४०० कुत्ते ऐसे ही सौकीन हो गये तब तो कुत्तों का खासा जमाव दीखेगा और आश्चर्य नहीं, कि कहीं एक पृथक कुत्तों का सिनेमा हाउस खोलना पड़े। जिस दिन इस कुत्ते को सिनेमा देखना होता है, उस दिन आप सिनेमा के द्वार पर खड़ा हो जाता है और द्वार खट खटाता है। जब तक द्वार रक्षक उसे अन्दर नहीं जाने देता तब तक निरंतर द्वार खट खटाया करता है। जब सिनेमा हाउस का मैनेजर उसे कृपा कर सिनेमा में बिठा देता है तो आप बड़े चाव से अन्त तक सिनेमा देखता है। यदि उसकी दृष्टि के सामने कोई महाशय या श्रीमती आगयी तो आप अपनी सीट पर दोनों पैरो से खड़े होकर सिनेमा के दृश्य का अमृत पान करता है

भजन ।

यह तन चालू कासा डेरा
जैसे दामिनि दमक चमक का छण नहीं रहत उजेरा
मँड़ी मण्डप मुल्क खजाने अरु परि वार घनेरा
सो सब कौतुक सो दीसत है राम सम्हार सवेरा
गज घोड़ा अरु चाकर चेरा आखिर कोई न तेरा
जिनके कारण डोलत भरमत करता मेरा मेरा
थोड़े से जीवन के कारण बहुतक करत बखेड़ा।
काल बली की खबर नहीं है करै अचानक फेरा
कह सुखदेव समझ नर भौंदू छोड़ विषय उलझेरा
चरणदास हरि नाम भजन बिन कैसे होय निबेड़ा

भजन ।

जसोधा तोकूं आज कहां बन आई ॥ टेक ॥
तनक छाछके कारण मोहन बांधे ऊखल जाई ।
बजते तेरो कठिन हियो है नेक दया नहीं लाई ॥
अबहू करते छड़ी न छोड़े तुमसे कहूं समझाई
लोचन भर २ हरि रोवत है नेक लाज नहीं आई
ऐसे ऐसे माट दही और मक्खन बांधे कंवर कन्हाई
या सूरत पै आश धर मन की सुर मुनि ध्यान लगाई
ता सूरत पै तैंने माता करी बड़ी कठिनाई
अजहूं छौड़ देवो मोहन को श्याम सुन्दर बलि जाई

भजन ।

अवधू सो जोगी गुरु मेरा
जो इस पद का करे निबेरा ॥ टेक ॥
तरवर एक मूल बिन ठाढ़ा बिन फूलें फल लागे
शाखा पत्र नहीं कछु वाके अष्ट कमल दल गाजे
चढ़ तरुवर दो पक्षी बोलें एक गुरु इक चेला ।
चेला रहा जगत चुन खाया गुरु निरन्तर खेला
शून्य शिखर पर गाय बियानी धरती क्षीर जमाया
माखन रहासो सन्तन खाया छाछ जगत् भरमाया
पक्षी को खोज मीन के मारग कहे कबीर दो भारी।
अपरम्पार पार पुरुषोत्तम मूरत की बलिहारी॥

भजन ।

तरफै बिन बालम मोरा जिया ॥ टेक ॥
दिन नहीं चैन नैन नहीं निद्रा तरफत २ भोर किया
तन मन मोर रहट अस डोले शून्य सेज पर जन्म छिया
नैन थकित भयं पन्थ न सूझै साईं बेदरदी सुध न लिया
कहत कबीर सुनो साधो हरो पीर दुख जोर किया

भजन ।

अजब यह देश दीवाना गया सो फिर न आया है
सिफत कुछ और ही यहां की नज़र दिल से समाया है
दिया ना सूत सब छोड़ी गया मलकूत में भाई
कमाल उस में न पाया कुछ कदम आगे बढाया है
चला जब रूत से आगे हुआ लाहूतमें दाखिल ।
मिला हाहूत का द्वारा भरम सब ही उड़ाया है ॥
जब हूतुल हूत में जाई धुनि बंशी की सुन पाई ।
यहां से हूत में जाकर परम सुख दुःख मिटाया है

भजन ।

कोई खोजो रे खोजो भव जल लहर उतङ्ग सङ्ग
शिव सनकादि आदि मुनि नारद

शारद शेष कुरंग।
व्यास दत्त शुक देव दिवाने,
पावत फिर २ अंग ॥
शृङ्गी ऋषि पराशर भारे,
कीने वामने तङ्ग।
ऋषि मुनि सब क्रोध कुबुद्धि,
भयो तपस्या भङ्ग।
ब्रह्मा विष्णु दशों अवतारा,
खुल२ नचों अपङ्ग।
और जगत जिय कहां लग बरणौं,
आशा रङ्ग तरङ्ग ॥
तुलसी ताव दाव नर देही,
सुरत गगन चढ गङ्ग।
गूंजत भंवर फूल फूलवारी,
कमल अधर लखि भृङ्ग ॥

भजन।

कन्हैया लेलो तुम अवतार ॥ टेक ॥
दीन दुखी जन बिलख रहे हैं,
भक्त आपके सिसक रहे हैं।
दानव दुष्ट चमक रहे हैं,
कर झूठे व्यापार ॥ १ ॥
अन्न बिना भूखों मरते हैं,
वस्त्र बिना शरदी सहते हैं।
दीन किसान दुखी रहते हैं,
होकर अब लाचार ॥ २ ॥
सत्य प्रेम की राह दिखादो,
आलस निद्रा रोग नशादो।
मिथ्या मान मोह सब डादो,
कर मन को प्यार ॥ ३ ॥
सरस बाँसुरी शीघ्र बजादो,
विश्व प्रेम का राग सुनादो।
भक्ति भाव को वेग जगादो,
करदो भव से पार ॥ ४ ॥
अभय रूप का दर्श दिखादो,
त्यागी प्रेमी भक्त बनादो।
भारत को आजाद करादो,
होकर अब साकार ॥ ५ ॥

भावना।

सर्वेश! आज हम सब, बल हीन हो रहे हैं।
स्वाधीनता को खोकर, पथभ्रष्ट हो रहे हैं ॥
आजाद हम कभी थे, परतन्त्र हो रहे हैं।
निज धर्म, कर्म भाषा, आदर्श खो रहे हैं ॥
जाती यता का गौरव, जो था हमारे दिल में।
अज्ञान-घन-घटा से, वह लुप्तहो रहा है ॥
हम दीन हीन भारत, सब ओर से विवश हैं
किससे सुनावें भगवन! बरबाद हो रहे हैं ॥
अत एव शीघ्र आकर, अबतो हमें बचाओ।
शिक्षित करो सुधारो बल शौर्य को बढाओ।
जगदीश हम? अभयहों, सन्मार्गके पथिक हों।
पावन-प्रतिज्ञा-रत हो, सेवा व्रती सदय हों ॥
जातीय-गानगावें, विज्ञान बल बढावे।
मन मातृ भक्ति लावे, नैराश्य को मिटावेंग ॥
बर दान ये हमें दो, हम अपके हीं सुत हैं।
इस देश को जगा कर, आजाद फिर बनादो ॥

गीता का ज्ञान गाकर, निज बंशरी बजाकर । स्वर्गीय भक्ति रससे, इस देश को नन्हादो ॥

लादूराम जोशी ।

शारीरिकश्रम ।

स्वार्थ और परमार्थ दोनों की सिद्धि के लिये अर्थात अभ्युदय और मोक्ष दोनों की प्राप्ति के लिये और सब साधनों की अपेक्षा शारीरिक श्रम ही सब से अधिक व्यापक और मुख्य साधन है। प्राचीन और वर्त्तमान इतिहास इस बात की साक्षी देता है कि आज तक संसार में ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं हुवा है कि जिसने बिना शारीरिक श्रम किये संसार में सफलता प्राप्त की हो, या भगवान् के दर्शनों का लाभ उठाया हो, राज नैतिक इतिहास बतलाता है कि जिन वीरों ने बड़े २ राज्य स्थापन किये हैं वह घोर शारीरिक श्रम करने पर ही इस में सफली भूत हुये हैं। संवार व्यापी वाणिज्य भी श्रम ही का फल है। व्यापार की व्यवस्था को देश देशान्तरों में भ्रमण करने वाले ही ठीक कर सकते हैं। इसी तरह भगवान् की प्राप्ति के लिये भी शारीरिक श्रम ही मुख्य साधन है।

शरीर।

सांसारिक और पारमार्थिक दोनों प्रकार की उन्नति के शिखर पर चढनेके लिये हमारा शरीर ही हमारे लिये प्रथम सोपान है। हमारी सब प्रकार की उन्नति का आरम्भ यहीं से होता है। इस लिये इसका स्वस्थ और सुदृढ होना परमावश्यक है शरीर को स्वस्थ और सुदृढ बनाने के अनेक साधन होंगे परन्तु इस देश में तीन साधन मुख्य माने जाते हैं। प्राणायाम व्यायाम और शारीरिकश्रम परन्तु मैं इन तीनों में से शारीरिक श्रम को ही मुख्य समझता हूं इतना ही नहीं मेरे विचार में तो प्राणायाम और व्यायाम तो शारीरिकश्रम के अन्तर्गत ही आजाते हैं। जो मनुष्य शारीरिक श्रम करता है उस का प्राणायाम और व्यायाम स्वतः ही हो जाता है। प्राणायाम करने में दीर्घ श्वासोश्वास से अन्तड़ियों का मल साफ होता है, उससे हमारा प्राण बलवान होता है और जठराग्नि तेज होती है जिस से शरीर स्वस्थ और सुदृढ होता है व्यायाम जिस में आसन इत्यादि सब क्रियायें शामिल हैं शरीर के अवयवों को हरकत देने का नाम है जिसका फल भी यही होता है कि हमारा श्वास दीर्घ हो जाता है जिस से प्राण वायु में बल आता है और वह वेग से चलने लगता है, इस के अतिरिक्त हमारे जोड़ों के हरकत करने से उन जोड़ों में लगे हुए मल और दूषित वायु का संचालन होता है। इतना

ही नहीं व्यायाम में शरीर के अंगो को बार २ हरकत मिलती है जिस से वह दृढ होते हैं कारण हम शरीर के जिस भाग से काम लेते हैं वही भाग मजबूत हो जाता है और जिस से काम नहीं लेते वह कमजोर हो जाता है आप लोगों ने सुना होगा कुछ लोग खड़े हुए तप करते हैं अथवा एक हाथ को उपर को उठाए रखते हैं जिसका फल यह होता है कि उनके हाथ पांव सूख जाते हैं और निकम्मे होजाते हैं इसी तरह जो पढ़े लिखे आदमी रात दिन पुस्तकों में सिर मारते रहते हैं और किसी प्रकार का व्यायाम नहीं करते उनके हाथ पांव और शरीर सब निकम्मे हो जाते हैं वह मृतक की भांति अपने पैरोंसे चल फिर नहीं सकते, जिस तरह मरे हुए आदमी के लिये अरथी की आवश्कता होती है उसी तरह इनके शरीर को उठाने के लिये भी गाड़ी की जरूरत होती है। व्यायाम करने वाले बलवान होते हैं उनका प्रत्येक अंग सुदृढ होता है। उनका जठर बलवान, शरीर सुन्दर और सुडोल होता है। व्यायाम और प्राणायाम शारीक बल के लिये दोनों बड़े लाभ दायक हैं और इनका अभ्यास भी अवश्य करना चाहिये परन्तु यह दोनों क्रियायें हमारे जीवन में व्यापक नहीं हो सकतीं कारण यह अपूर्ण हैं, सहायता के तौर पर हमको इनका प्रयोग करना चाहिए परन्तु इन दोनों के भरोसे हमारा जीवन चल नहीं सकता कारण यह हमारी रोटी का प्रश्न हल नहीं कर सकते। प्राणायाम और व्यायाम करने के पश्चात खाने की आवश्यकता पड़ती है वह इन दोनो क्रियाओं से उत्पन्न नहीं हो सकती। खाने के लिए तो धन्धे की आवश्यकता है। जो लोग दिन भर प्राणायाम करते हैं वह अपने मनमें महान् योगी भी हों परन्तु प्रत्यक्षमें उनको दास वृत्ति का अवलम्बन करना पड़ता है। रोटी के लिए हृदय को तुच्छ बना कर याचना करनी पड़ती है, जिसके सामने हाथ पसारना पड़ता है उससे नीचा बनना पड़ता है। वही हाल केवल व्यायाम करने वालों का देखा। बड़े २ पहलवान हैं जिनका बल भैंसके बराबर होता है दूसरों की गुलामी करते फिरते हैं। बन्दर की भान्ति दूसरों के इशारों पर नाचते हैं और इनाम के लिए हाथ जोड़ते फिरते हैं। हमने इन विशालकाय पुरुषों को देखा है इनका हृदय बड़ा तुच्छ होता है कारण एक यही है कि रोटी के लिए इनको दूसरोंका सहारा लेना पड़ता है।

अब शारीरिकश्रम को लीजिए इससे प्राण का संचालन शारीरिक बल, सुन्दरता, निरोगता, भोजन और स्वतंत्रता सब कुछ मिलते हैं जो आदमी शरीरसे काम नहीं करता वह दास है, उसकी दासता का व्यापकरूप होता है जो शारीरिक श्रम नहीं करता वह कभी स्वतंत्रता को प्राप्त नहीं कर सकता वह प्रत्येक कार्य में दूसरे पर निर्भर रहता है बोझा उठाने वाले कुली पानी भरने वाले कहार रसोइया, गाड़ीवाला इत्यादि वह सब का गुलाम होता है। रोटी कमाने में भी वह

सदैव गुलाम रहता है। जो आदमी शरीर से श्रम नहीं करसकता वह चाहे चारों वेदों का ज्ञाता पण्डित भी हो कभी स्वतंत्र नहीं हो सकता स्वतंत्रता की सब से पहली शर्त शरीर से काम करना है। विद्या और बुद्धि द्वारा रोटी कमाने में परावलम्बी होना पड़ता है और जो परावलम्बी है वह स्वतन्त्र किस भांति हो सकता है? यूनान देश का जिकर है कि वहां लुकमान हकीम अपने धर्म का प्रचार करता था उस का प्रचार वहां के बड़े आदमियों को न भाया। एक दिन लुकमान ने सोचा कि इन का अभिमान तोड़ना चाहिये यह विचार कर उस ने अपने शिष्यों द्वारा सब अमीरों और अहलकारोंको निमन्त्रण दे दिया लुकमान के निमन्त्रण को पाकर वह लोग बहुत प्रसन्न हुए। लुकमान जो भोजन नित्य किया करता था वही उन के लिये भी उस ने बनवाया। उस के शिष्यों ने सब के लिए भोजन परोस कर अंगोछे से ढक दिया। जब सब लोग जमा हो गए और अपने २ स्थान पर भोजन के लिए बैठ गए तो लुकमान ने अपने शिष्यों को इशारा किया और उन्होंने सब के भोजन पर से अंगोछे उठा लिए। लुकमान भी अतिथियों के साथ सम्मिलित था। उन्होंने देखा तो दो २ जौ की रोटियां और एक २ प्याला छाछ थी। वह सब बड़े क्रोधित हुए परन्तु लुकमान जैसे स्वतन्त्र व्यक्ति को क्या कह सकते थे? किसी ने छाछ का प्याला पिया और किसीने एक दो टुकड़ा खाया परन्तु लुकमान उनकी तरफ न देख कर और नीची गर्दन किए हुए अपना भोजन खाता रहा। जब भोजन समाप्त हुआ तो उस ने उठ कर एक वक्तृता दी और उस में उसने बतलाया कि "जिस आदमी को केवल दो जौ की रोटियों की आवश्यकता है वह अपने धार्मिक विचार प्रकट करने में किस तरह चुप रह सकता है?"

भक्त।

भगवान् के जितने भक्त हुए हैं उन का यही व्यवहार रहा है। ऋषि मुनि अपने शरीर से परिश्रम करके भोजन उपार्जन करते थे वे वैखानस या वानप्रस्थी कहलाते थे, फावड़ा उनका मुख्य हथियार होता था। जमीन को खोदकर उस में कन्द मूल फल और अन्न लगाते थे फिर उस से अपना निर्वाह करते थे जिसके प्रताप से उनका अन्तःकरण शुद्ध, मन अचल, चित्त स्थिर और बुद्धि स्वच्छ होती थी। सब लोग इस कहावत को जानते हैं कि "जैसा खाय अन्न वैसा हो जाय मन" वानप्रस्थ के कठिन तप बिना अन्तःकरण निर्मल किस तरह हो सकता है? जो मनुष्य भगवान् के दिए हुए शरीर से रोटी उपार्जन न करके बुद्धि के विषय और वाक्जाल द्वारा रोटी ठग कर अपना पेट भरते हैं उन के मलीन, गुलाम और झूठे हृदय में परं सत्य, पूर्ण ब्रह्म परमात्मा के दर्शन कैसे हो सकते हैं। यह सर्वथा असम्भव है। कबीर जी, दादूजी, धन्ना भक्त, रैदास जी सब महात्मा अपने हाथ से कमा कर खाते

थे तब ही भगवान् उनके स्वच्छ हृदय में प्रकाशित हुए। अब भी तलाश करोगे तो भक्ति का अंश उन्हीं में पाओगे जो अपने हाथ से कमा कर खाते हैं। मनका शरीर से घनिष्ट सम्बन्ध है जो लोग अपने शरीर को काम में नहीं लगाते उन के विचारों का पवित्र रहना बड़ा दुष्कर है। इस लिये स्वार्थ और परमार्थ शरीर, मन इन को ठीक करने के लिए शारीरिकश्रम सब से पहली बात है। जो आदमी संसार में सुख चाहता है और भगवान से मिलना चाहता है उस को सब से प्रथम पाठ शारीरिक श्रम का पढना चाहिये। जो व्यक्ति और जो जाति जीवित रहना चाहती है और उन्नत होना चाहती है उस को सब से पहली तय्यारी शारीरिकश्रम की करनी होगी। शारीरिकश्रम ही धर्म, मोक्ष और भक्ति में मुख्य साधन है। गुरुदेव की सेवा करने में भी सब से पहला काम शारीरिक श्रम ही है।

शान्ति—यूरोप और अमेरिका के विद्वान प्रयत्नकरते हैं कि संसारमें शांति स्थापनहो जाय। उस के लिए कभी तो वह शान्ति सभा बनाते हैं और कभी अन्तर्जातीय पंचायत खोलते हैं। कभी हथियारों की संख्या नियत करते हैं कि अमुक देश अमुक संख्या में सेना रख सकता है। इन शान्ति सभाओं में बहुत देशों के प्रतिनिधि भी जाते हैं परन्तु फिर भी शान्ति का कहीं पता नहीं है, नित्य प्रति अशान्ति ही बढती जाती है। कारण क्या है केवल यही, कि वह अशान्ति में से शान्ति निकालना चाहते हैं। वह छाया को पकड़ना चाहते हैं। वह माया को वशमें करना चाहते हैं, वह अग्नि से जल उत्पन्न करने की अभिलाषा रखते हैं। यद्यपि उनका यह प्रयत्न सच्चे दिल से भी है परन्तु यह सब बालु में जल देखने की भान्ति है। माया में शान्ति कहां? उस का तो रूप ही चंचल है। वह सम्पूर्ण छल और कपट है उस में सत्य का अंश भी नहीं है। स्थूल रूप की अपेक्षा उसका सूक्ष्म रूप अधिक लुभाने वाला है परन्तु वह अत्यन्त दुःख दाई है। जैसे मिट्टी से रांगा सुन्दर है, रांगे से चांदी, चांदी से सोना, सोने से हीरे को और हीरे से रेडियम को सुन्दर बतलाते हैं और इन सब से सुन्दर वह रमणियां हैं जिन के लिये लोग पहाड़ों, समुद्रों और जङ्गलों में सिर मार २ कर इन निर्जीव पदार्थों को खोजते फिरते हैं। अब सोचो इन पदार्थों में शान्ति कहां है और जब इन में शान्ति का अस्तित्व ही नहीं है तो वह मिल कैसे सकती है? शान्ति तो भगवान में है और भगवान से वह शान्ति भक्ति द्वारा मिल सकती है। भगवान की भक्ति के अतिरिक्त संसार में शांति का अन्य कोई भी उपाय नहीं है। भक्ति के प्रादुर्भाव और प्रचार से ही शांति सम्भव है इस के सिवाय अन्य कोई उपाय न कभी हुआ और न होगा। जितना २ यह संसार प्रकृति की खोज में जावेगा उतनी ही संसार में अधिक अशान्ति

होगी, जिसको शान्ति कहा जाता है और जिन भौतिक पदार्थों के द्वारा हम संसार की शान्ति के स्वप्न देखना चाहते हैं वह सब अशान्ति के कारण हैं और वह उन्नति नहीं है बल्कि अवन्नति है। शान्ति का एक मात्र उपाय भगवान की भक्ति है।

ब्रह्मचर्य—अपने बाल्य कालसे ब्रह्मचर्य की चर्चा सुनते आरहे हैं। ब्रह्मचर्य के लिये अच्छी २ पुस्तकें लिखी जाती हैं, पत्रों में उत्तम लेख निकलते हैं, बहुत व्याख्यान दिये जाते हैं और ब्रह्मचर्य प्रणाली को पुनर्जीवित करने के लिये कितनी ही संस्थाएं खोली जा रही हैं इस प्रकार के जितने भी प्रयत्न सच्चे भाव से किए जाते हैं वह ब्रह्मचर्य प्रणाली को पुनर्जीवित करने के लिये बड़े सहायक हैं और यह देखा जाता है कि इस संबन्ध में बहुत कुछ हो रहा है परन्तु जब इन सब बातों का फल कम निकलता है और जो प्रत्यक्ष है तो निश्चय करना पड़ता है कि इस संबन्ध में अभी हमारी त्रुटियां बहुत हैं और जब तक त्रुटियों को दूर नहीं करदिया जावेगा यथार्थ फल का मिलना भी असम्भव है। इस प्रणाली को पुनर्जीवित करने में सब से कठिन यह समस्या है कि शास्त्र की मर्यादा के अनुसार चलने वाले आदमी नहीं मिलते। यह मानी हुई बात है कि बालकों को ब्रह्मचर्य व्रत पर चलाने के लिए यह परमावश्यक बात है कि उन के संरक्षक और अध्यापक भी ब्रह्मचर्य व्रतधारी हों। वह चाहे ब्रह्मचारी हों चाहे वानप्रस्थी हों। जिसने ब्रह्मचर्य और तपस्या का व्रत ले रक्खा है, जो त्यागी है जिस के भाव पवित्र हैं वही बालकों के भावों को पवित्र रख सकता है। ब्रह्मचर्याश्रम वानप्रस्थ के साथ बन्धा हुआ है। यदि लोग तपस्वी वानप्रस्थी बनने को तय्यार नहीं हैं तो ब्रह्मचर्य का उद्धार होना असम्भव है। यदि सौभाग्य से कोई तपस्वी और संयमी आदमी भी मिल जावे तो यह रुकावट पड़ती है कि लोग अपने बालकों को ब्रह्मचारी बनाने के लिये देना नहीं चाहते, शायद आप कहें कि नहीं यदि यह बात होती तो एक २ गुरुकुल में तीन २ सौ लड़के कहां से आते ? यह सब, लोगों ने ब्रह्मचारी बनाने के लिये ही दिए हैं। उस के उत्तर में हमारा कहना है कि सम्भव है किसी २ ने इस विचार से भी अपने लड़के को दिया हो परन्तु कम से कम ६५ फीसदी लड़के पढ़ाई के लिये ही दिते जाते हैं अपने बालकों को ब्रह्मचर्याश्रमों में दाखिल करते समय यदि लोग यह निर्णय करके बालकों को दाखिल करें कि यहां पर शास्त्र की मर्यादा के अनुसार काम होता है या नहीं तो आज जो ब्रह्मचर्याश्रम खुले हुए दिखाई देते हैं प्रायः वह सब बन्द होजावें। आजकल लोगों को विद्या का इतना मोह है कि जबतक पढ़ाई की लम्बी चौड़ी स्कीम उनके सामने न रक्खो वह सन्तुष्ट ही नहीं होते। पढ़ाई ही नहीं बल्क

और भोजन भी वह अपने मनके अनुकूल चाहते हैं। तपस्या से जी घबराता है और यदि पिता समझाने से मान भी जावे तो माता का कलेजा अधर होजाता है। वह अपने बालक को केवल एक लंगोटी बान्धे हुए नहीं देख सकती क्योंकि वह तपस्या के रहस्य को जानती ही नहीं। यदि हजारों मनुष्यों में कोई वीर और समझदार माता पिता अपने पुत्र को ब्रह्मचर्य की कठिन तपस्या के लिए देना भी चाहें तो रखने वाले ऐसे अगुआ नहीं मिलते कि जिन्होंने स्वयं तप करके अनुभव प्राप्त किया हो कि वर्तमान समय में ब्रह्मचर्य किस भान्ति पालन किया जासकता है। वह मनु के श्लोक और वेद के मंत्रों को जान कर ही ब्रह्मचर्य विज्ञान के आचार्य बने हुए हैं। इन सब बातों से ब्रह्मचर्य प्रणाली के पुनरोद्धार करने में घोर कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा परन्तु यह नितान्त आवश्यक है। यदि हम ब्रह्मचर्य का पुनरोद्धार नहीं कर सकेंगे तो हमारी उन्नति असम्भव है। हमारा सबसे आवश्यक और पहला सुधार ब्रह्मचर्य है॥

महात्माओं के वाक्य।

मनुष्य को चाहिये क्रोध को प्रेम से जीते, बुराई को भलाई से, लालची को उदारता से और झूठे को सत्य से।

यदि कोई आदमी मोटा और पेटू हो जाता है और सोने वाला व चारपाई तर लेटने वाला बन जाता है तो वह मूर्ख उस शूकर की भान्ति होता है जो मैले पर गुजारा करता है और बार बार जन्म लेता है।

बुढ़ापे तक स्थिर रहने वाली भलाई सुखदाई है, दृढ़ता से पकड़ा हुआ विश्वास सुख प्रद है, ज्ञान का प्राप्त करना आनन्द दायक है और पापों से बचना सुखदाई है।

जो अनहुई बात को कहता है और जो हुई से इनकार करता है वह दोनों नरक गामी हैं।

तृष्णा से प्रेरित हुए मनुष्य बेड़ियों और बन्धनों से जकड़े हुए पाश में फंसे हुए पशु की भान्ति चिर काल तक बार २ दुःख उठाते रहते हैं।

जिस का मन संयम में है उस ही में शक्ति, शान्ति, प्रेम और बुद्धि है।

उस ही ने सम्पूर्ण जगत को जीता है जिस में पूर्ण शान्ति है।

पण्डित, चिन्ता, भय, शोक, मोह, निराश और घृणा इन सब से दूर रहता है।

बौद्ध-भिक्षुक-

१. आंख का निग्रह करना उत्तम है नासिका का निग्रह उत्तम है, कानोंका निग्रह अच्छा है, और जिह्वा का निग्रह उत्तम है।

२. शरीर का संयम अच्छा है, वाणी का

संयम उत्तम है, विचारों का संयम उत्तम है इसी तरह प्रत्येक बात में संयम उत्तम है। जो भिक्षुक सब बातों में संयम कर लेता है वह सब दुखों से छूट जाता है।

३-जो अपने हाथ को वश में रखता है, जो अपने पावों को वश में रखता है, जिसकी वाणी वश में है, जो अच्छी तरह वशवर्ती है जो, अन्तरात्मा में आनन्द मनाता है, जो संयमी है, जो एकान्तवासी और सन्तोषी है उसे भिक्षुक कहते हैं॥

४-भिक्षुक जो अपने मुख को वश में रखता है। जो बुद्धि मानी और शान्ति से भाषण करता है। जो अर्थ और आदेशकी की शिक्षा देता है। उसकी वाणी प्रिय है॥

५-जो आदेश में निवास करता है, जो आदेश में आनन्द मनाता है, जो आदेश के अनुसार ध्यान करता है जो आदेश का अनुगामी है वह भिक्षुक सत्य आदेश से कभी नहीं गिरेगा।

६-जो कुछ मिल जावे उसे तुच्छ न समझे, कभी दूसरों से ईर्षा न करे जो भिक्षुक औरों से ईर्षा करता है उसे शान्ति नहीं मिलती।

७-उस भिक्षुक की प्राप्त पदार्थ को तुच्छ नहीं समझता चाहे उसे बहुत कम मिला हो देवता भी सराहा करते हैं, यदि उस का जीवन पवित्र है और वह आलसी नहीं है।

८-जो अपनेको नाम व रूप से भिन्न समझता है वह मिथ्या पदार्थों के लिये शोक नहीं करता और वह निस्सन्देह भिक्षुक है॥

९-वह भिक्षुक जो करुणा से काम करता है और बुद्ध के सिद्धान्त मानने में अचल है प्राकृतिक कामनाओं, और हर्षसे मुक्त हुआ शान्ति के स्थान (निर्वाण) को प्राप्त हो जावेगा

१०-अय भिक्षुक ! इस नौका को खाली करदे, खाली होने पर यह शीघ्र चलेगी, और राग व द्वेष को त्याग कर तू निर्वाण को प्राप्त हो जावेगा॥

पांच को छिन्न भिन्न करदे, पांच को छोड़दे, पांच से ऊपर होजा। ऐ भिक्षुक ? जो इन पांच बेड़ियों से बच निकला है वह ही पार गया है।

ऐ भिक्षुक ध्यान कर, और लापरवा मत बन। अपने विचार को ऐसे पदार्थ पर मन लगा जो तुझे सुख देता है, क्यों कि ऐसा न हो कि अपनी लापरवाई के कारण नर्क में तुझे अग्नि का गोला निगलना पड़े और उस अवसर पर जलते हुये तू चिल्ला, कर कहे कि यह दुःख है।

विना ज्ञान के ध्यान नहीं और विना ध्यान के ज्ञान नहीं, वह जिस को ज्ञान व ध्यान दोनों हैं निर्वाण के निकट है।

वह भिक्षुक जिस का शरीर, वाणी और मन शान्त है, और चित्त एकाग्र है,

और जिसने संसार के प्रलोभनों को छोड़ दिया है वह शान्त कहलाता है।

गोशाला।

आश्रम की गोशाला के बारे में मगनलाल भाई गान्धी ने जोकि महात्मा गान्धी जी के भतीजे और सत्याग्रह आश्रम के मैनेजर हैं नीचे लिखी सम्मति प्रगट की है।

मैं यहां देखा कि गौ का पालन नहीं किन्तु पूजा होती है। फूलों से पूजा करना यह पूजा का एक ढङ्ग है। उस में जड़ता भी हो सकती है। यह पूजा जो मैंने देखी सो चैतन्य मय है और गौशाला को गौमाता के पवित्र मन्दिर की तौर से स्वच्छ और पवित्र रखा जाता है। बत्सों को देख कर चित्त तृप्त होता है।

चातुर्थिक ज्वर !

अपामार्ग की पत्ती के चूर्ण में आधा गुड़ मिला दो २ रत्ती की वटिका बना बिना जल के बारी के दिन दो २ घण्टे पर देने से चौथियाज्वर दूर होता है।

(तिजारी व चौथियाज्वर)

गोदन्ती हरताल १ तोला १ सेर निम्ब की पत्ती के कल्क में रख कर दस सेर कण्डों के गजपुट में फूंक दे स्वांग शीतल होने पर भस्म निकाल कर उसमें से १ रत्ती भस्म शुद्ध स्फटिका २ मास को मलाई या मक्खन मिलाकर ज्वरसे पहिले खिलावे तो एक ही मात्रा में तिजारी और चौथिया ज्वर रुक जाता है।

अन्यच्च।

गोदन्ती हरताल की धूम रहित भस्म बना कर २-२ रत्ती शहद में मिलाकर तीन बार ज्वर आने के प्रथम देने से उसी दिन ज्वर रुक जाता है

तिजारी।

भांग और गुड़ को मिला कर १ गोली बना ज्वर से २ घण्टा पहिले देने से ज्वर रुक जाता है

सामातिसारहरप्रयोगः।

शुद्ध अफीम १ तोला जीरा भुना ८ तोले सौंठ ४ तो० हींग भुन २ तो० को पानी में पीस कर चने प्रमाण गोलीयां बना कर प्रत्येक दस्त के पीछे एक २ बटी दे २-३ मात्रा में लाभ होगा।

संग्रहणी नाशक योग।

ग्रहणी रोगी गौ के तक्र के साथ लोध का चूर्ण सदा पान करे, इससे कष्ट साध्य भी साध्य होजाता है।

हीरानन्द ब्रह्मचारी,

भगवद्भक्ति आश्रम रामपुरा, रेवाड़ी।

निम्न लिखित महानुभावों ने भक्ति के संरक्षक बन कर भक्ति को अपनाने की कृपा की है।

१. राव साहब श्री वल्लभ प्रसाद जी रईस आनरेरी मजिस्ट्रेट गुलजारबाग, पटना १०१)

२. राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा ५१)

३. श्रीमान् राय भाई गनेशीलाल जी आर्मी मिनिस्टर अलवर राज्य ५१)

४ राव श्रीराम रईस नांगल २५)

५. म० शोभाराम जी डूंगरवास २५)

६. चौ० धर्मसिंह जी मलिक, तहसीलदार रेवाड़ी २५)

७. राव निहालसिंह जी सूबेदार पाल्हावास २५)

८. बा० रुद्रम्बरदास जी बी० ए० इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स पटना यू० पी०। २५)

९. श्रीमती रानी निहालकौर धर्मपत्नी ले० राव बहादुर बलबीरसिंह जी ओ० बी० ई० जागीरदार रामपुरा रेवाड़ी। २५)

सहायक।

१. पं० मूलचन्द जी प्रेसीडेंट म्युनिस्पल कमेटी पलवल। ११)

२. श्रीमती उमरावकौर धर्मपत्नी राव जगमालसिंह जी रईस नांगल ११)

३. महाशय शादीराम जी बस्तापुर, रेवाड़ी। ५)

बिना गुरु के सिद्धान्त कौमुदी।

भाषाफक्किका प्रकाश ॥

इस पुस्तक में बहुत ही सरल भाषा में तथा प्रश्नोत्तर के रूप में सिद्धान्त कौमुदी की गूढ़ फक्किकाओं को समझाया गया है। विद्यार्थियों के बड़े लाभ की पुस्तक है इस से विद्यार्थी लघु पढ़ कर स्वयं सिद्धान्त कौमुदी पढ़ सकते हैं। मूल्य केवल ॥)

ज्ञानधर्मोपदेश।

इस छोटी सी पुस्तक में वेद शास्त्र तथा धर्म का सार संगृहीत है और वेदान्त की उत्तम कविताओं का संग्रह है। मूल्य ~)॥

वेदोपनिषत्।

इस पुस्तक में ईश, कठ, केन, मुण्डक, और माण्डूक्यादि उपनिषदों तथा वेदों के उत्तम २ मन्त्रों का अर्थ सहित संगृह है। मूल्य।~)

अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला।

इस पुस्तक में गीता और उपनिषदों से १०८ बहुत ही उत्तम श्लोकों का संग्रह है। यह नित्य पाठ करने की पुस्तक है। मूल्य ~)।

भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता।

इस पुस्तक में प्रथम मूल है तत्पश्चात् अन्वय तथा सरल संस्कृत में प्रत्येक मूल के पर्याय हैं फिर सरल हिन्दी भाषानुवाद है। यह गीता के जिज्ञासु तथा कथक्कड़ों के बहुत ही लाभ की पुस्तक है पृष्ठ संख्या ४२६ होने पर भी हमने भक्त जनों के हितार्थ मूल्य केवल ॥=) ही रक्खा है शीघ्रता कीजिये केवल १००० ही प्रतियाँ हैं जिन के अति शीघ्र ही निकल जाने की आशा है।

सत्य शब्द संगृह।

इस पुस्तक में महात्माओं की उत्तम २ वाणियों का संगृह है। वेदान्त विषय की उत्तम कोटि की कवितायें कवित्त तथा सवैये हैं। अन्त में विचार सागर है। यह भक्त जनों के लिए पाठ की बड़ी ही उत्तम पुस्तक है मूल्य ।=)

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" आश्रम रामपुरा रेवाड़ी।